109

गढ़वाल में कौन कहाँ

(सम्वत २००७-८ वि०)

खंड १

संकलन कर्ता व प्रकाशक

महीधर शर्मा बड़थ्वाल

त आज
। है कि
वह मेरी
सकी है । तो
ढ़वाल के
इसलिए
ओर से,

की उपा-
न प्रभृति
अपरिपक्व
ार्थ रूप का
देश में मुझे
त द्वितीय
ाइयों को

आरम्भ
ने मुझे
कौटुम्बिक
के समय,
टियों और
है कि

पुस्तकमाला
वाल सम्बन्धी
विमर्श का भी

प्राप्ति स्थान—

श्री महीधर शर्मा बड़थ्वाल,
गाँव बुडोली, पट्टी गगवाड़स्यूँ
पोस्ट ल्वाली (पौड़ी) गढ़वाल

मूल्य लागत मात्र
केवल २।।) रु०

मुद्रक
रामाधार
नया हिन्दुस्तान प्रेस
चान्दनी चौक दिल्ली

रा
नया हिन्दुस्तान
चांदनी चौक

प्राक्कथन

सन '३८ से मेरे मस्तिष्क के सामने चमकने वाला विचार-पुन्ज आज मूर्तरूप में पाठकों के समक्ष है। यद्यपि मुझे संशय के साथ खेद भी है कि इतने लम्बे समय से, जिस पुस्तक के मैं बहुधा स्वप्न देखा करता था वह मेरी विभिन्न कठिनाइयों तथा विघ्न-बाधाओं के कारण प्रस्तुत न हो सकी है। तो भी पारस्परिक परिचय की इस साधारण सी सामग्री के द्वारा मुझे गढ़वाल के संगठन और तदनुसार उत्कर्ष का लक्ष्य-विन्दु दृष्टि आता है और इसलिए मातृभूमि के लिए, मेरी स्थिति के एक अत्यन्त साधारण व्यक्ति की ओर से, यह भी पर्याप्त सेवा है, यह मैं मान लेता हूं।

मैंने सन '३८ में ही गढ़वाली समाज के लिए, ऐसी एक पुस्तक की उपादेयता का प्रश्न श्री ललिताप्रसाद नैथानी वकील तथा श्री भक्तदर्शन प्रभृति मित्रों पर विचारार्थ प्रकट किया था; किन्तु अपने अस्पष्ट तथा अपरिपक्व विचारों के कारण मैं काफी समय तक उनके सामने पुस्तक के यथार्थ रूप का चित्रण नहीं कर सका था। फिर भी उनकी ओर से इस दिशा में मुझे प्रोत्साहन ही मिला था। दुर्भाग्यवश उसके कुछ ही समय पश्चात् द्वितीय महायुद्ध की घटायें उमड़ आईं और तदनुसार प्रकाशन की कठिनाइयों को देखते हुए मैंने इस विषय पर विचार करना ही छोड़ दिया था।

गत दिसम्बर से मैंने इस भुलाए हुए विषय पर पुनः विचार आरम्भ किया और गढ़वाल के कई प्रतिष्ठित व्यक्तियों और अधिकारियों तक ने मुझे इसके लिए प्रोत्साहित किया। किन्तु विभिन्न परिस्थितियों और कौटुम्बिक क्लेशों के कारण मेरे इस कार्य में बाधा होती रही; बल्कि मुद्रण के समय पुस्तक के प्रूफ भी मैंने अस्वस्थ स्थिति में ही पढ़े और कई त्रुटियों और अशुद्धियों का रहना भी इस प्रकार स्वाभाविक हो गया। यही कारण है कि मेरा यह प्रयास मुझे काफी अधूरा और अस्पष्ट सा लगता है।

मेरी योजना, वास्तव में, इसी नाम की एक ऐसी सूचना-पुस्तक [illegible] प्रस्तुत करने की है जिसके द्वारा गढ़वाली बन्धुओं का गढ़वाल सम्बन्धी ज्ञान अद्यवत् रखा जा स[illegible] पारस्परिक विचार विमर्श का भी

एक सरल और सुलभ मार्ग निर्माण हो। इसी आधार पर सूचना पुस्तक माला की इस प्रथम पुस्तक में गढ़वाल की भौगोलिक स्थिति, ऐतिहासिक विवेचन और संस्कृति तथा सभ्यता जैसे विषयों का संक्षिप्त विवरण भी देना पड़ा है। अगले वार्षिक संस्करणों में 'गढ़वाल में कौन कहां ?' के विषय, गढ़वाल की अनेक ज्ञातव्य सूचनाओं को लेकर होंगे और गढ़वाल के विद्वत्समाज का उनमें मुझे पर्याप्त सहयोग मिल सकेगा।

इस पुस्तक के लिए सामग्री संकलन में मुझे स्वर्गीय श्री हरीकृष्ण जी रतूड़ी के 'गढ़वाल का इतिहास', और 'वसुधारा' तथा अंग्रेजी की कुछेक पुस्तकों और सरकारी रिपोर्टों का सहारा लेना पड़ा है। कई उत्साही गढ़वाली बन्धुओं ने भी मेरे पत्रों का उत्तर भेजने में मेरी सहायता की है अतः मैं इन पंक्तियों के द्वारा उनका आभार प्रदर्शन करता हूँ।

प्रस्तुत पुस्तक में विभिन्न व्यक्तियों व जातियों का कहीं अरुचिकर वर्णन हुआ हो, इसका मुझे भय है। हो सकता है कि किसी जाति या पेशे की व्याख्या करने में अज्ञानतावश मुझ से कहीं भूल हो गई हो। किन्तु मेरा दृढ़ विश्वास है कि गढ़वाल परिवार जाति-पांति की विभिन्न सीमा रेखाओं को लांघ कर क्रमशः विकास के व्यापक और विस्तीर्ण क्षेत्र में प्रवेश होता जा रहा है और इसलिए मेरी भावनाओं को यथार्थ रूप में ही लिया जायगा।

मेरा ख़याल गढ़वाल के शासनयन्त्र का वर्णन करने में वहां के समस्त कर्मचारियों की सूचियां भी देने का था और कई विभागों की सूचियां मुझे मिली भी। किन्तु अधिकाँश कार्यालय इस ओर सर्वथा उदासीन रहे और इस प्रकार यह प्रश्न भावी संस्करणों के लिए छोड़ दिया गया। यही बात टिहरी गढ़वाल सम्बन्धी सूचनाओं के विषय में भी रही है। अनेक प्रयत्न करने पर भी वहां से आवश्यक सूचनाएँ प्राप्त न हुईं। अगले संस्करण में टिहरी गढ़वाल के सम्बन्ध में भी पर्याप्त सामग्री प्राप्त हो सकेगी, इसका मुझे विश्वास है।

मेरी अयोग्यता का भय और अपरिपक्व विचार प्रणाली की आशंका मुझे सिकोड़ रही हैं कि गढ़वाल का विद्वान समुदाय मेरी इस साधारण सी भेंट को किस प्रकार ग्रहण करता है। किन्तु मुझे आज प्रसन्नता भी है कि मेरा गढ़वाल परिवार मेरे मन की भावना का इस प्रकार चित्रण देख सकेगा।

महीधर शर्मा

बड़थ्वाल

भौगोलिक स्थिति

गढ़वाल कहाँ है, इसकी व्याख्या सहस्रों वर्ष पूर्व ऋषी-मुनियों द्वारा ले गये अनेक ग्रन्थों का उद्धरण मात्र है। आज की दुनिया भले ही इस र्वत्य-प्रदेश की प्रमुखता और प्राधान्य से परिचित न हो क्योंकि मनुष्य की र्याणकारी प्रवृत्तियों को वर्तमान अर्वाचीन विचार-धारा में उपहास की वस्तु ना जाता है और एतदर्थ मानव संसार को निर्माण का पाठ पढ़ाने वाले इस ांड की अनभिज्ञता किसी के लिए आश्चर्यजनक नहीं है। मनुष्य जाति विकास का मार्ग स्थिर करने वाले विचारवान् मस्तिष्क आरम्भ में ही वाल की भौगोलिक स्थिति को जान गये थे किन्तु कालान्तर में परिवर्तन झोंका आया कि लोगों की दृष्टि से वह ओझल हो गया।

गढ़वाल प्रकृति की विचित्रताओं के लिए काश्मीर या स्विटज़रलैंड है! र केवल यह है कि काश्मीर और स्विटज़रलैंड के प्राकृतिक साधनों को वीय आवश्यकताओं के अनुकूल करोड़ों के व्यय से तोड़ा-मरोड़ा गया है, के गढ़वाल आज के यान्त्रिक युग में भी, पंडित जवाहरलाल नेहरू के ानुसार (गढ़वाल यात्रा के लेख में) अब तक अकेले टेलिग्राफ के तारों ही प्राप्त कर सका है। उत्तर प्रदेशीय सरकार की नयार-बाँध-योजना में वत्ता ऐसी स्थिति उत्पन्न हो चली थी कि गढ़वाल की कन्दराओं में प्रकाश र दुनिया की उस पर दृष्टि पड़ती, किन्तु दुर्भाग्यवश किन्हीं कारणों से योजना भी स्थगित होगई जान पड़ती है।

पुराणों के अनुसार गढ़वाल की भौगोलिक स्थिति के वर्णन में जम्बू द्वीप ाम विशेष प्रसिद्ध है; आगे चलकर 'धार्मिक महत्व' का उल्लेख करते हुए द्वीप का विस्तृत विवरण हो सकेगा। उस द्वीप के अन्तर्गत हिमालय भी वर्णन आया है जो कि आधुनिक भूगोल के अनुसार एशिया महाद्वीप क्षिणी भाग में नैपाल तथा सिक्कम से काश्मीर तक पूरे १२०० मील के में फैला हुआ है। प्राचीन भूगोल के अनुसार यह हिमालय पाँच अलग- खंडों में, जोकि क्रमशः नैपाल, कूर्माचल, केदारखंड, जालन्धर काश्मीर हैं, बटा हुआ हैं और केदारखंड ही गढ़वाल का प्राचीन नाम

वैज्ञानिक खोजों, उसमें उत्पन्न होने वाले पदार्थों के गुणों तथा विशिष्ट अनुभवों के ही आधार पर गढ़वाल को तपो-भूमि माना गया है।

गढ़वाल का उत्तरी हिमालय अत्यंत ठंडा है और बारहों मास बर्फ से ढका रहता है। कार्तिक से फाल्गुन तक वहाँ निरन्तर हिमपात होता रहता है। गढ़वाल के अन्य ऊँचे स्थानों में भी प्रायः बर्फ पड़ता है किन्तु यह अनिवार्यतः नहीं होता।

वर्षा भी गढ़वाल के सभी भागों में होती रहती है किन्तु ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों पर विशेषतः वर्षा-ऋतु में बहुत पानी पड़ता है। अब जंगलों के कट जाने से अलबत्ता वर्षा का अभाव होने लगा है और इसी से एक ही स्थान पर बहु वृष्टि होकर भी अनेक रूप में जनता के कष्ट-कठिनाइयों का बढ़ाव हो जाता है। यहाँ वर्षा-काल में पश्चिमी वायु से और शीतकाल में उत्तरी वायु से वर्षा आती है।

मौसमें—गढ़वाली वर्ष तीन भागों में विभक्त होता है जिन्हें क्रमशः रूड़ी या खड़सौ, वसगाल या चतुर्मासा तथा ह्यूंद या शीतकाल कहते हैं। रूड़ी या खड़सौ गरम मौसम को कहते हैं और यह फाल्गुन से ज्येष्ट पर्यन्त (आधा फर्वरी से आधा जून तक) माना जाता है। उसके पश्चात् बसगाल या चतुर्मासा आषाढ़ से असौज पर्यन्त (आधा जून से आधा अक्टूबर तक) और तत्पश्चात् ह्यूंद या शीतकाल कार्तिक से माघ पर्यन्त (आधा अक्टूबर से आधा फर्वरी तक) गिना जाता है।

जन-संख्या—गढ़वाल के दोनों जिलों की जन-गणना सन् १९४१ में ६९९४८४ थी जिसमें पौड़ी गढ़वाल की ६०२११५ और टिहरी गढ़वाल की ३९७३६९ थी। सन् १८८१ में सम्मिलित जन-संख्या ४४५०९२, सन् १८९१ में ६४८६१५, सन् १९०१ में ६९८३१५, सन् १९११ में ७८०४६०, सन् १९२१ में ८०३६०० और सन १९३१ में ८८३४५८ थी। अतः यह सिद्ध हुआ कि सन् १८८१ से सन् १९४१ तक की गढ़वाल की सम्मिलित जन-संख्या में ४५४३९२ की वृद्धि हुई है जो कि पौड़ी गढ़वाल की सन् १९११ की जन-संख्या (४७९६११) के प्रायः समान ही है और सन् १८८१ की सम्मिलित जन-संख्या से ८५ प्रतिशत अधिक है। अब अगले वर्ष सन् १९५१ की जन-गणना में इस वृद्धि का अनुपात और भी अधिक होने जा रहा है।

पैदावार—(अन्न) गेहूँ, धान, मंडवा, जौ, ऊमाजौ, झँगोरा, चीणा, कौणी, ज्वार, बाजरा, चुवा, मकई, उड़द, मसूर, तोर, गहथ, मटर, सूंटा, मूंग, भट्ट, ओगल, तिल, लाई, अलसी, भांग, सन।

(मसाले) अदरक, हल्दी, धनियाँ, इलायची बड़ी, सौंफ, मेथी, मिर्च, लहसन, चोरा, फरण, दालचीनी।

(फल) केला, नारङ्गी, दाड़िम, अनार, नाशपाती, सेब, खुबानी, पपीता, आडू, आम, निम्बू, लीची, आलूबुखारा, किम्पू, बेल, ककड़ी, फूट, अंजीर, तिम्बल, (जंगली फल) हिंसर, किनगोड़, काफल, भमोरा।

(भाजियाँ) मूली, आलू, अरबी, तैडू, तुरई, फलियाँ, फरासबीन, कद्दू, लौकी, पेठा, गोबी, चचिंडा, करैला, राई, पालक, प्याज़, टिमाटर, (जंगली भाजी) गिंठी।

(फूल) गुलाब, गुलदावली, जुही, चमेली, चम्पा, गेंदा।

(अन्य) तम्बाकू, चाय, गन्ना।

(धातुयें) तांबा (धनपुर, बगोडी में), लोहा (दशोली, कंजणी, कुइली, भरपुर में) शीशा (गिट्टी परगना रंवाई में) सोना गङ्गा की रेत में व टकनौर के सोनगड नाले में तथा अबरक, कच्चे हीरे (विजोत्रा) और कच्चे नीलम (भिलंगना नदी के उद्गम पर) पाये जाते हैं।

(जंगली) इमारती व दस्तकारी की लकड़ियाँ, जड़ी-बूटियाँ, जानवरों की खालें, कस्तूरी, शिलाजीत, राल, तारपीन, भोजपत्र और सुहागा।

पहाड़—हमारे इस देश में पहाड़ कौन-कौन हैं? इस प्रश्न का उत्तर केवल यह कह कर दिया जा सकता है कि यहाँ सर्वत्र पहाड़ हैं अलबत्ता उनका रूप वैभिन्य है। हिमालय और उसकी शाखायें तथा मध्यवर्ती दूसरे पहाड़ व पहाड़ियाँ। उत्तर-पश्चिम में बुशहर से लेकर नीति घाटी तक हिमालय की ऊँची-ऊँची पर्वत-शिखाएँ कहीं-कहीं २५००० फीट से भी अधिक ऊँची हो गई हैं और जिन पर विजय प्राप्त करने के लिये पश्चिमी संसार के लोग कई बार आ-आकर चले गये हैं। संक्षेप में गढ़वाल के मुख्य पर्वतों की नामावलि निम्न प्रकार है:—

(१) चांगसील—विशाल हिमालय पर्वत टिहरी गढ़वाल को बुशहर से जुदा करता है और उस दिशा में सबसे ऊँचा पर्वत है। हिमाचल प्रदेश और रुपसा नदी के बीच यह अवस्थित है।

(२) यमनोत्री—यह पर्वत यमुना नदी का उद्गम स्थान है और उत्तर-पूरब से यमुना और टौन्स नदी के मध्य पश्चिम की ओर चला गया है। केदार कांठा और बन्दरपुंछ इसकी मुख्य चोटियाँ हैं।

(३) बन्दर पुँछ—यह पर्वत भागीरथी, यमुना और अगलाड़ नदी के मध्य दक्षिणमुखी पर्वत है और गङ्गा तथा हिंवल नदी के संगम तक चला

गया है। सुरकंडा, घड़ियाल और कुजापुरी इस पर्वत की प्रमुख चोटियाँ हैं।

(४) मुमारू कांठा—यह गंगोत्री के निकट से आरम्भ होकर टिहरी तक विस्तारित है। कुश, कल्याणी, हडालाकी और बेलूक इस पर्वत की प्रमुख चोटियाँ हैं।

(५) पंयाली कांठा—यह पर्वत दोनों गढ़वालों की सीमा पर ठीक उत्तर से ही आरम्भ होकर अलकनन्दा और भागीरथी के संगम तक फैला हुआ है। इसकी प्रमुख चोटियां राजबोंगा, मणिकनाथ और चंद्रबदनी हैं।

(६) कामेट—यह पर्वत हिमालय की विस्तृत पर्वतमाला में २५४४७ फीट ऊँची चोटी का पर्वत है। पश्चिमी दुनियाँ के १२ पर्वतारोही समय-समय पर इस पर्वत पर विजय प्राप्त करने आये थे।

(७) सतोपंथ—गढ़वाल की उत्तर-पूर्वी सीमा पर २३२४० फीट की ऊँचाई का पर्वत है जिस पर सन् '३८ में दो बार विजय प्राप्त करने के लिये जर्मन अभियान आये थे।

८. नाली कांठा—उत्तरी पैनखंडा में २१६४० फीट ऊँचा पर्वत शृंग है और माना घाटी और नीतिघाटी के दर्मियान गौरी पर्वत, हल्दू पर्वत भी हिमालय की विशाल शाखाएं हैं।

९. दूनागिरी—यह पर्वत गढ़वाल को पूर्वी सीमा से गढ़वाल की ओर फैला हुआ है और इसकी ऊँचाई २३१८४ फीट है। स्वीस अभियान ने सन् १९३९ में इस पर आरोहण कर सफलता पाई थी।

१०. नन्दा देवी—यह भी दूनागिरी की ही तरह पूर्वी सीमा पर जिला अलमोड़ा तक फैला हुआ है इसकी ऊँचाई २४३९१ और २५६४५ फीट है और इस पर पोलिश अभियान ने सन् १९३९ में विजय प्राप्त की थी। सन् १९३७ और सन् १९०५ में, पहिले भी इस पर अन्य लोगों द्वारा आरोहण की असफल चेष्टाएँ की गई थीं।

११. त्रिशूल—बिरही और नदांकिनी के बीच में २३३६० फीट ऊँचा पर्वत है जिस पर सन् १९०७ में डाक्टर लौंगफास्ट नामी एक अंग्रेजी पर्वतारोही ने सफलता प्राप्त की थी।

१२. चौखम्बा—केदारनाथ के निकट यह हिमाच्छादित पर्वत २३४२० फीट ऊँचा एक सुन्दर शृंग है जिस पर पर्वतरोहियों के तीन चार असफल आक्रमण हो चुके हैं। इसके निकट नरनारायण नामक पर्वत भी है।

१३. माना—गढ़वाल के ठीक उत्तर में २३८६० फीठ ऊँचा एक सुमनोहर पर्वत है। इस पर्वत पर सन् १९३७ में स्माइथ नामक एक अंग्रेज ने

आरोहण की सफलता प्राप्त की थी। दूदातोली, हरियाना, दीपा का डांडा और उटाई आदि गढ़वाल के मध्यवर्ती पहाड़ हैं जिनकी शाखा और उपशाखायें समस्त मध्यवर्ती और दक्षिणी गढ़वाल में यत्र तत्र फैली हुई हैं।

नदियां—गढ़वाल में पहाड़ों की बहुतायत के साथ ही नदियों का भी जाल सा बिछा हुआ है। हर दो पहाड़ों या छोटी पहाड़ियों के दर्मियान छोटी बड़ी एक नदी नाला अवश्य है। किन्तु इस प्रदेश की मुख्य नदियां प्रायः बांक (ग्लेशियर) से निकलती हैं जहाँ प्रकृति ने समतल भूमि के सिंचाव के लिए बर्फ के रूप में जल का एक अपार कोष एकत्रित किया होता है। कुछ नदियाँ अलबत्ता मध्यवर्ती पहाड़ों से निकल कर निकटवर्ती नदी नालों का पानी बड़ी नदियों में लाती या मैदानों को ले जाती हैं। गढ़वाल की प्रमुख नदियाँ निम्न प्रकार हैं :—

१. टोन्स—हिमालय से निकल कर टिहरी गढ़वाल के उत्तर पश्चिमी भाग में बहती हुई बाहर आकर यमुना से मिल गई है।

२. यमुना—हिमालय पहाड़ के यमनोत्री नामक स्थान से निकलती है और टोन्स की ही तरह उत्तर पश्चिमी भाग में बहती हुई नीचे की ओर आई हैं।

३. भागीरथी—जो गंगा जी के नाम से प्रख्यात है और जिसे हिन्दू मतावलम्बियों की दृष्टि में पतित पावनी माना जाता है, गोमुख पर्वत से निकलती है और टिहरी गढ़वाल के बीचों बीच बहती और हरिद्वार होती हुई मैदानों की ओर चली गई है। इस नदी के किनारे अनेक तीर्थ स्थान हैं।

४. भिलंगना—विसोन पर्वत के वशिष्ठाश्रम नामक स्थान से निकलकर दक्षिण-पश्चिम की ओर बहती हुई टिहरी में श्री गंगा जी के साथ विलिन हो गई है।

५. मंदाकिनी—केदारनाथ के उत्तरी बांक से निकल कर दक्षिण की ओर बहती और रूद्र प्रयाग में अलकनन्दा से मिल जाती है! काली और मदमहेश्वरी नदियाँ इसकी प्रमुख शाखाएं हैं जो उत्तरी हिमालय से ही निकलती हैं।

६. अलकनन्दा—जो आरम्भ में विष्णु गंगा के नाम से पुकारी जाती है अलकापुरी ग्लेशियर से निकल कर पहिले दक्षिण की ओर और उसके

बाद पश्चिम की ओर बहती हुई देव प्रयाग में श्री गंगा जी से मिल जाती है। जिला गढ़वाल की यही सब से बड़ी नदी है जो समस्त जिले की नदियों का पानी नीचे लाती है।

७. धौली—धौलागिरी पर्वत से निकल कर पहिले दक्षिण पश्चिम की ओर उसके पश्चात् उत्तर पश्चिम की ओर होकर विष्णु प्रयाग में अलकनन्दा से मिल जाती है। भागीरथी नदी और ऋषि गंगा इसकी मुख्य शाखाएँ हैं।

८. बिरही—दूनागिरी और नन्दादेवी के मध्यवर्ती ग्लेशियरों से निकल कर पूरब की ओर बहती हुई अलकनन्दा से मिलती है। सन् १८९४ ई० में इधर-उधर के पहाड़ों के टूटने से इसी नदी में बिरहीताल, जिसे गोना ताल भी कहते हैं, बंध गया था और जिसके टूटने से राजधानी वाला श्रीनगर बह गया था।

९. नन्दाकिनी—नन्दादेवी पर्वत से निकल कर नन्द प्रयाग में अलकनन्दा से मिल जाती है।

१०. पिण्डर—पूर्वी हिमालय से निकलकर कर्ण प्रयाग में अलकनन्दा से मिल गई है।

११. नयार—(पूर्वी व पश्चिमी) दूदातोली और दीपा का डांडा के निकट से आरम्भ होकर बांघाट के निकट एक दूसरी से मिल जाती और उसके पश्चात व्यास घाट में श्री गंगा जी में विलिन हो जाती हैं।

१२. रामगंगा—दूदातोली के निकट से निकलकर अलमोड़ा को चली गई है और तल्ला सलाण और भाबर में पुनः लौट कर मन्दाल, पलायण और सोना नदी को अपने साथ मिलाकर मैदानों की ओर चली गई है।

१३. विदासणी और हिंडल नदियां भी गढ़वाल के मध्यवर्ती पहाड़ों से निकल कर अनेक नदी-नालों का जल एकत्रित करती हुई गंगा जी से मिल गई हैं। रेवा, मालन और खासण भी इसी प्रकार भाबर होती हुई जिला बिजनौर की ओर चली गई हैं।

झील तालाव—गढ़वालमें झील और तालाबों की कमी नहीं है। स्थान स्थान पर, पहाड़ोंके ऊपर, नदि तटों पर और घाटियोंमें पानीके कई ताल प्रकृति ने निर्माण किये हैं। मुख्य ताल निम्न प्रकार हैं :—(१) बधाणी ताल बांगर पट्टी में, (२) महास्त्र ताल धाती कटूर में, (३) शस्त्रु का ताल बड़ कोट में (४) डोडी ताल केलसू के ऊपर, (५) नच कोचिया ताल फोल्ड गाँव के ऊपर,

(६) सतोपन्थ बदरी नाथ और लोकपाल कुंड के मध्य में, (७) वासुकी ताल और दूरी ताल नागपुर में (८) विरही ताल या गौना ताल दशोली में, (९) भेकल ताल और देवताल परगना बधाण में है। इन झीलों और तालों के अतिरिक्त गढ़वाल के हिमालय पर यमनोत्री, गंगोत्री, बदरीनाथ, तपोवन, गौरीकुण्ड, तप्तकुण्ड में गरम पानी के सोते भी हैं।

पौड़ी गढ़वाल—१. पैनखंडा में पैनखंडा मल्ला व तल्ला, उर्गम, कालीफाट मल्ला, मैखंडा, वामसू, प्रकंडी। २—नागपुर में नागपुर, मल्ला, तल्ला व बिचला, खदेड़, दशज्यूला, कालीफाट तल्ला और कालीपार। ३—दशोली में बण्ड, दशौली मल्ला और तल्ला। ४—बधाण में बधाण मल्ला व पल्ला, कड़ाकोट, पिंडर वार-पार, खनसर, नन्दाक। ५—चांदपुर में चांदपुर मल्ला, तल्ला और विचला, लोहवा, चौथान, चोपड़ाकोट, ढाईज्यूली, सिरगुर और रानीगढ़। ६—देवलगढ़ में घनपुर, बछणस्यूं, चलनस्यूं, कंडारस्यूं, वाली कंडारस्यूं, बिडोलस्यूँ, घुड़दोड़स्यूँ, कटूलस्यूँ। ७—बारहस्यूँ में नांदलस्यूँ, इडवालस्यूं, रावतस्यूं, बनगढ़स्यूं, कंडवालस्यूं, सितोनस्यूं, गगवाड़स्यूं, बनेलस्यूं, पूर्वी व पश्चिमी मन्यारस्यूं, असवालस्यूं, पटवालस्यूं, पैडूलस्यूं, कफोलस्यूं और खातस्यूं। ८—चौंदकोट में मवालस्यूं, रिंगवाड स्यूं, जैतोलस्यूं, मौंदाड़स्यूं, गुराड़स्यूं, पिंगला पाखा और क्रिमगडीगाड़। ९—मल्ला सलाण में वंगारस्यूं, ढौंडियालस्यूं, साबली, खाटली, सैंधार, गुजड़, इड़ियाकोट मल्ला व तल्ला, तलाईं और कोलागाड। १०—तल्ला सलाण में विजलोट, बूंगी, पैनों, बदलपुर मल्ला, बिचला व तल्ला, सीला कौड़िया। ११—गंगा सलाण में लंगूर वल्ला, पल्ला, अजमेर बल्ला, पल्ला, डबरालस्यूं, ढांगू मल्ला, तल्ला व बिचला, उदयपुर मल्ला, तल्ला बल्ला और पल्ला। १२—भावर में हल्दूखाता, सुकरौ, मोटाढांक और सनेह।

टिहरी गढ़वाल—परगना रवाईं में १६ पट्टियां, परगना जौनपुर में ९, परगना उत्तर काशी में ६, परगना उदयपुर में ७, परगना नरेन्द्रनगर में ९, परगना चन्द्रबदनी में ३, परगना प्रतापनगर में ७, परगना चिल्ला में ६, परगना भिलंग में ४, परगना कीर्तिनगर में ७ और परगना भरदार में ५ पट्टियां हैं।

★

बाद पश्चिम की
जाती है। जि
जिले की नदिय

७. धौली—धौला
उसके पश्चात्
नन्दा से मिल
शाखाएँ हैं।

८. बिरही—दूना
पूरब की ओर
इधर-उधर के
ताल भी कहते
श्रीनगर वह ग

९. नन्दाकिनी—न
से मिल जाती

१०. पिण्डर—पूर्वी
मिल गई है।

११. नयार—(पूर्व
से आरम्भ हो
पश्चात ब्यार

१२. रामगंगा—दू
और तल्ला स
और सोना नद

१३. विदासणी औ
निकल कर अ
मिल गई हैं।
हुई जिला वि

झील तालाब
स्थान पर, पहाड़ोंके
ने निर्माण किये हैं
पट्टी में, (२) महा
(४) डोडी ताल के

ऐतिहासिक विवेचन

गढ़वाल का प्राचीन इतिहास अनेक पौराणिक गाथाओं तथा किम्बदन्तियों के आधार पर बना हुआ है। भगवान वेदव्यास ने स्कन्ध पुराण के एक भाग 'केदार खंड' में इस प्रदेश का भूगोल और इतिहास विस्तार से वर्णन किया है और महाभारतादि अनेक ग्रन्थों में भी विभिन्न नामों से गढ़वाल का परिचय मिलता है। बाहर से आये हुए विभिन्न यात्रियों तक ने इस पर्वतीय भू-भाग की विशालता और धार्मिक मान्यता की परिपुष्टि की है।

यहाँ के आदिम निवासियों के सम्बन्ध में पुराणों का मत है कि सिद्ध गन्धर्व तथा यक्ष, किन्नर यहाँ निवास करते थे और उनका राजा कुबेर था। भगवान रामचन्द्र जी के वनवास काल में उनके गुरू वशिष्ठ अरुन्धति के साथ हिमदाय पर्वत की एक गुफा पर रहे और वहाँ के किरात लोगों की तरह उन्हें भी काला कम्बल पहिन कर रहना पड़ता था। सम्भव है गढ़वाल के मध्यवर्ती इलाके में भांग के पौदों के रेशों से बनी हुई खुरदरी चद्दर (भंगेले) या कम्बल को लपेट कर रहने की अब तक चली आने वाली परिपाटी तभी से चली आती हो। कहीं यह भी वर्णन मिलता है कि हिमालय निवासी किरात, कम्बोज और हूण आदि जातिओं से राजा रघु का युद्ध हुआ था और किसी ने हिमालय में भील, किरात पुलिन्द और तंगण जातियों की सृष्टि बताई है। महाभारत काल में इन जातियों की तीन शक्तियों का वर्णन मिलता है राजा सुबाहु श्रीपुर (श्रीनगर) में, विराट बैराटगढ़ी (कालसी के निकट) में, और बाणासुर ऊखीमठ में राज्य करते थे। कुछेक अंग्रेज लेखकों का कथन है कि सक, नाग, हूण, खस, किरात और कमयु जातियाँ इस पर्वतीय प्रांत में निवास करती थीं। नाग जाति (नाग के उपासकों) के होने का प्रमाण—शेषनाग पांडुकेश्वर में, भेकलनाग रथगाँव में, मंगल नाग तलवर में, धनपुर नागमरगाँव में, लोदिया नाग जेलम (नीती घाटी) में, पुष्कर नागनाथ में, नागदेव पौढ़ी में, कालिंग नाग सरबढियाड रवाईं में, स्यूरिया नाग रैथल टकनौर में, नागराजा सेमगाँव रमोली में, महासागर नाग थाती कठूड़ में, हूण नाग भदूरा में अबतक पूजे जाते हैं। नागपुर, उर्गम के समान गढ़-

वाल के कई स्थानों के नाम भी इसी के प्रमाण हैं गाँव-गाँव में नागराजा का पूजन तो नागजाति के अस्तित्व और प्रभाव का साक्षी है ही।

खस जाति के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह कांकेशस पर्वत तुर्किस्तान और कैस्पियन सागर तथा आसाम के खसिया पहाड़ से गढ़वाल में आए और हूण लोग (नागवंशी राजपूत) तातार से। खसिया जाति के गढ़वाल में आने का समय ईसा की पाँचवी व छटी शताब्दी प्रतीत होता है और यह भी, कि उन्होंने अपने बलशाली प्रयत्नों से यहाँ के आदिवासी पुलिन्द और तंगण जाति पर अधिपत्य स्थापित कर लिया था। उस समय गढ़वाल में बौद्ध धर्म का प्रचार था इसलिए खसिया जाति के विजेता अधिकाँशतः बौद्ध धर्म में प्रविष्ट होकर छोटे-छोटे अनेक राज्यों में बँट गये थे। उसके थोड़े ही समय पश्चात् जब कि अरब में इस्लाम धर्म का प्रचार हो रहा था, गढ़वाल में शंकराचार्य का उदय हुआ और उन्होंने इस गढ़प्रान्त के धार्मिक स्थलों का पुनरुद्धार किया तथा ज्योतिर्मठ (जोशीमठ) की स्थापना की। समस्त गढ़-प्रान्त इस प्रकार पुनः सनातनधर्मी बन गया।

खसिया जाति के राज्यकाल में गढ़वाल एक समृद्धिवान प्रदेश बन गया था। कहा जाता है उन्होंने अपने पुरुषार्थ और प्रयत्नों से गढ़वाल की भूमि को हरा-भरा और उर्वरा बना दिया था, पशुओं की भी उन्नति हो गई थी और इस प्रकार जन-संख्या की वृद्धि होना भी स्वाभाविक ही था। जन-साधारण का जीवन पर्याप्त सुखी और सम्पन्न होगया था इसलिए मैदानी भारत सुन्दर जलवायु वाले इस समृद्ध प्रदेश पर टकटकी लगाए देखने लगा। इधर इन गढ़वाली राजाओं में राज्य-लिप्सा के कारण पारस्परिक द्वेष और अशान्ति भी उत्पन्न होने लगी। अतः भाँति-भाँति के मैदानी लोगों का यहाँ आवागमन आरम्भ हो गया। कांगड़ा, शिमला, नैपाल तथा कुमाऊं के राज्यों में भी उस समय इसी प्रकार की खलबली सी मच रही थी। और तदनुसार एक ऐसे भविष्य का आभास हो रहा था कि जब गढ़वाल को किन्ही भयंकर कठिनाइयों के झंझावत में पड़ने के लिऐ अपना रूपान्तर करना पड़ता। गढ़वाल के ५२ गढ़ (जिन्हें गढ़वाल नाम की संज्ञा प्राप्त होने का कारण बताया जाता है) सातवीं शताब्दी तक बन चुके थे और प्रत्येक गढ़ का सरदार एक स्वतंत्र राजा की तरह पहाड़ों की विभिन्न चोटियों पर राजधानी बनाकर रहने लगा था। आज निम्नलिखित ५२ गढ़ों के अतिरिक्त भी गढ़वाल में गढ़ या गढ़ नाम के कई गांव मौजूद हैं।

क्रम संख्या	गढ़ का नाम	स्थान	शासक जाति	विशेष
१	नागपुरगढ़	नागपुर	नागवंश	अन्तिम राजा भजनसिंह
२	कोल्लीगढ़	बछणस्यूं देवलगढ़	बछवाण विष्ट	
३	रवाड़गढ़	बदरीनाथ के मार्ग में	रवाड़ी जाति	
४	फल्याणगढ़	फल्दाकोट	फल्याण ब्राह्मण	राजा शमशेरसिंह ने दान दिया था
५	बांगरगढ़	बांगर	नागवंशी राणा	एकबार खसिया धिरवाण जाति का था
६	कुईलीगढ़	ववीली	सजवाण जाति	इसको जौरासीगढ़ भी कहते हैं
७	भरपूरगढ़	भरपूर	,, ,,	अन्तिम थोकदार गोविन्दसिंह
८	कुंजणीगढ़	कुंजणी	,, ,,	अन्तिम थोकदार सुल्तानसिंह
९	सिलगढ़	सिलगढ़	,, ,,	अन्तिम राजा सबलसिंह
१०	मुंगरागढ़	रवाई	रावत जाति	अब यहाँ रौतेला रहते हैं।
११	रैंकागढ़	रैंका	रमोला जाति	
१२	मोल्यागढ़	रमोली	,, ,,	
१३	उपूगढ़	उदैपुर	चौहान ,,	
१४	नालागढ़	देहरादून		अब इसे नालागढ़ी कहते हैं।
१५	सांकरीगढ़	रवाईं	राणा ,,	
१६	रामीगढ़	शिमला प्रान्त	,,	

१७	विराल्टागढ़	जौनपुर	रावत जाति	अन्तिम थोकदार भूपसिंह
१८	चाँदपुरगढ़	तैली चाँदपुर	सूर्यवंशी राजा	राजा कनकपाल यहीं आए थे।
१९	चौंडागढ़	शीली चाँदपुर	चौंडाल जाति	जाति का नाम स्थान के नाम से
२०	तोपगढ़		तोपाल जाति	राजा तुलसिंह ने यहाँ तोप ढलवाई थी।
२१	राणीगढ़	पट्टी राणीगढ़	खाती जाति	इसे एक राणी ने स्थापित किया।
२२	श्रीगुरुगढ़	सलाण	पडियार (परिहार)	अन्तिम राजा विनोदसिंह था
२३	बधाणगढ़	बधाण	बधाणी	पिण्डर नदी के ऊपर है।
२४	लोहबागढ़	लोहबा	लोहबाल नेगी	दिलवरसिंह व प्रमोदसिंह प्रतापी राजा थे।
२५	दशोलीगढ़	दशोली		यहाँ मानवर प्रतापी राजा हुआ।
२६	कण्डारागढ़	नागपुर	कण्डारी	यहाँ का अन्तिम राजा नरवीरसिंह था।
२७	धौनागढ़	इडवालस्यूँ	धौन्याल	
२८	रतनगढ़	कुंजणी	धमादा	यह ब्रह्मपुरी के ऊपर है।
२९	ऐरासुगढ	श्रीगर के ऊपर		
३०	इडियागढ़	रवाईं बड़कोट	इडिया जाति	रूपचन्द नामक सरदार ने विध्वंस किया।
३१	लंगूरगढ़	पट्टी लंगूर		
३२	बागगढ़	गंगा सलाण	बाग्रदी नेगी	यहाँ भैरवनाथ का प्रसिद्ध मंदिर है।
३३	गढ़कोटगढ़	मल्ला ढांगू.	बगडवाल बिष्ट	
३४	गड़तांगगढ़	टकनौर	भोटिया जाति	
३५	बनगढ़ गढ़	बनगढ़स्यूं		अलकनन्दा के दक्षिण में।

क्रम संख्या	गढ़ का नाम	स्थान	शासक जाति	विशेष
३६	भरदारगढ़	भरदार		
३७	चौंदकोटगढ़	चौंदकोट	चौंदकोटी जाति	
३८	नयालगढ़	कट्टलस्यूँ	नयाल	अन्तिम सरदार भग्गू नयाल था।
३९	अजमीरगढ़	अजमीर पट्टी	पयाल	
४०	कांडागढ़	रावतस्यूं	रावत जाति	
४१	साबलीगढ़	साबली पट्टी		
४२	बदलपुरगढ़	बदलपुर		
४३	संगेलागढ़	नैल चामी में	संगेला बिष्ट	
४४	गुजड़ूगढ़	गुजड़ू		
४५	जौंटगढ़	जौनपुर		
४६	देवलगढ़	देवलगढ़		देवल राजा के द्वारा स्थापित था।
४७	लोदगढ़		लोदी जाति का	
४८	जौलपुरगढ़			
४९	चम्पागढ़			
५०	डोडराक्वांरागढ़			अब बशहर राज्य में है।
५१	भुवनागढ़			
५२	लोदनगढ़			

उपरोक्त गढ़ों पर, खसिया सरदारों को पारस्परिक वैमनस्य के कारण शक्तिहीन पाकर, नई आई हुई आर्यजाति ने, जैसा कि ऊपर दर्शाया गया है, अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था और इस प्रकार समस्त गढ़वाल आर्यों के हाथ आगया। कालान्तर में ५२ गढ़ों के नये राजा भी भोग विलास में लिप्त होकर राज्य लिप्सा में पड़ गए, और उनके शक्तिहीन होने का भी समय आने लगा। उन दिनों चांदपुरगढ़ में राजा भानुप्रताप का राज्य था।

सन् ८८८ ई० (सम्वत् ९४५) में धार के पवांर वंशीय राजा का लड़का कनकपाल चांदपुरगढ़ में आकर राजा भानुप्रताप का अतिथि बना। कहा जाता है कि राजा भानुप्रताप के एक कन्या के अतिरिक्त कोई सन्तान नहीं थी इसलिए उसने अपनी कन्या का विवाह कनकपाल के साथ करके अपना राज्य भी उसी को दे दिया था। यह भी कहा जाता है कि राजा कनकपाल के साथ आबू (जहाँ पवांर वंश का राज्य था) से राष्ट्रीय जाति के लोग भी आए जो गढ़वाल के मध्यवर्ती भाग में चांदपुरगढ़ के पास सर्व प्रथम रहने लगे थे और जिन्हें आज राठी कहा जाता है। गढ़वाल में अजमेर, उदयपुर, चांदपुर, नागपुर आदि स्थानों के नाम के पीछे गढ़वाल के इतिहासकारों का यह भी अनुमान है कि उन्हीं नामों के मैदानी नगरों से आर्य जाति के लोग गढ़वाल मे आए और उन्होंने ही इन स्थानों को बसाया।

राजा कनकपाल की ३६ वीं पीढ़ी तक चांदपुरगढ़ में ही पवांर वंश राज्य करता रहा किन्तु सन् १५०० ई० में गद्दी पर बैठने वाले ३७ वें राजा अजयपाल ने सब ठकुराइयों को जीतकर चम्पावत् तक १०८२७ वर्गमील का राज्य बना दिया और इस प्रकार सन् १५१२ ई० में चाँदपुरगढ़ से अपनी राजधानी उठाकर वह देवलगढ़ में रहने लगा। देवलगढ़ में भगवती राजराजेश्वरी के यंत्र की स्थापना के बाद राजा अजयपाल सन् १५१७ ई० में श्रीनगर आगए और उसी स्थान को उन्होंने अपनी राजधानी बना लिया था। समस्त गढ़ों के सरदार या ठाकुर लोग अब राजा अजयपाल के राज्य में सेना के अफसर और थोकदार आदि बनकर रहने लगे थे और राज्य संचालन यथाविधि हो चला था।

पंवार वंश का ४२ वां राजा सहजपाल हुआ है जिसका नाम देवप्रयाग में श्री रघुनाथजी के मन्दिर पर लगे एक घंटे पर खुदा हुआ है। कहा जाता है कि सम्वत् १६१८ में राजा सहजपाल ने वह घंटा रघुनाथ जी के मंदिर को अर्पित किया था। राजा सहजपाल के बेटे राज बलभद्रपाल को दिल्ली के सम्राट जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर ने शाह की उपाधि दी और उसके कतिपय वीरत्वपूर्ण कार्यों के लिए उसे बहादुर शाहके नाम से विख्यात कर दिया था।

गढ़वाल के ४६ वें राजा महिपतशाह ने तिब्बत के कुछ भाग तक अपना राज्य विस्तार किया। गढ़वाल में "एक सिंह माधोसिंह" की लोकोक्ति के पीछे राजा महिपतशाह के आमात्य (प्रधान मंत्री) माधोसिंह की वीरता की कई कहानियाँ हैं। इन्ही माधोसिंह ने मलेथा गाँव की नहर निकलवाई थी। लड़ाई के लिए छोटी चीन में गए हुए माधोसिंह का वहीं देहावसान हो गया था। इसी राजा के राज्यकाल में रिखुवा (गढ़वाल का एक भड़) तथा दो बर्त्वाल बन्धु जनरलों की वीरता की अनेक गाथाएं चरितार्थ हुईं।

सन् १६४६ ई० में राजा पृथ्वीपतिशाह गद्दी पर बैठे, जिन्होंने औरंगजेब के शत्रु भतीजे सुलेमान शिकोह (जो औरंगजेब के द्वारा मारे जाने के भय से भागकर इस राजा की शरण में आया था) को कई वर्ष तक अपने पास छिपाए रखा और इस प्रकार कई तरह के विवाद मोल लिए। सुलेमान शिकोह की प्राप्ति के लिए औरंगजेब के कई प्रयत्नों को राजा पृथ्वीपतिशाह ने विफल कर दिया क्योंकि शरणागत की रक्षा के लिए अपने क्षात्रधर्म का पालन करना उन्हें अनिवार्य लगा। किन्तु दरबारियों के प्रपंच से राजकुमार मेदिनी-शाह ने सुलेमान शिकोह को औरंगजेब के पास पहुँचाया जहाँ उसे औरंगजेब की तलवार द्वारा संहार किया गया। राजा पृथ्वीपतिशाह के राज्यकाल की पुष्टी श्री रघुनाथजी के मन्दिर देवप्रयाग के द्वार पर अंकित लेख से होती है जो माधोसिंह भंडारी की पुत्रवधु मथुरा बैराणी के द्वारा अंकित कराया गया था।

सन् १६७६ में गढ़वाल की राजगद्दी पर राजा मेदिनिपतिशाह बैठे जिनके सम्बन्ध में "मेरी गंगा मेरे पास आयगी" की लोकोक्ति सर्वत्र प्रचलित है। कहा जाता है कि हरिद्वार में (हर की पैड़ी) पर गढ़वाल के राजा के सर्वप्रथम स्नान की परिपाटी को तोड़ने के लिए राजाओं और बड़े-बड़े लोगों के विरोध पर राजा मेदिनीपतिशाह ने उपरोक्त शब्द कहकर चाण्डी के मैदान में अपना डेरा डाल दिया था। सुबह होते ही देखा गया कि गंगाजी की नीलधारा वहीं बह रही थी जिससे सब लोग राजा की उच्चता पर आश्चर्य चकित हो गए।

उक्त राजा के पश्चात फतेहशाह गद्दीनशीन हुए जिनकी बाल्यावस्था के कारण कांगड़ा के चार कटोच सरदारों की सहायता से रीजेण्ट रानी ही राज्य-संचालन करती थी। कहा जाता है कि उन सरदारों के कारण गढ़वाल की जनता अत्यन्त दुखित हो गई थी क्योंकि उन्होंने रानी को प्रजा की वास्तविक स्थिति से सर्वथा अपरिचित कर दिया था और सदैव अपने स्वार्थ में ही संलग्न रहते थे। निदान जनता के एक षडयंत्र के द्वारा भटीसेरा के

पास 'कठैतु की चौंरी' पर उन चारों सरदारों का बलिदान कर दिया गया। इसके पश्चात् शंकर डोभाल और पुरिया नैथानी ने कार्यभार अपने ऊपर लेकर राज्य का संचालन किया। राजा फतेहशाह के पोते प्रदीपशाह के राज्यकाल में सन् १७४४ ई० में गढ़वाल पर रोहेलों का आक्रमण भी हुआ था। इस राजा के पास चन्द्रमणी डंगवाल प्रधान मंत्री थे जिन्हें राज्य सञ्चालन में अत्यन्त दक्ष माना जाता था। इस राजा के बाद इनके पड़पोते प्रद्युम्नशाह तक गढ़वाल पर चारों ओर से कई बार हमले होते रहे। अलमोड़ा, सहारनपुर, देहरादून बल्कि तिब्बत तक गढ़वाली राजाओं के भी युद्ध होते रहे और मुसलमानों और सिक्खों से भी लड़ाइयाँ हुई। बल्कि कुमांऊ के राज्य मंत्री श्री हरिकृष्ण जोशी के भाई हर्षदेव के आह्वान पर सन् १७६१ में गोरखों का भी गढ़वाल पर एक आक्रमण हुआ। इस आक्रमण में गोरखा सेना लंगूरगढ़ के प्रसिद्ध दुर्ग में प्रविष्ट हुई और लगातार एक वर्ष तक वहीं रही। उस बार गोरखों को परास्त होकर भागना पड़ा था किन्तु भविष्य में ऐसे आक्रमण न करने के लिए गढ़वाल की नैपाल से सन्धि हुई जिसमें नैपाल को १२०००) रु० सालाना देना स्वीकार किया गया।

श्रीनगर राजधानी के कर्मचारी और अधिकारीगण उन दिनों स्वार्थपरता और रागद्वेष में रत हो रहे थे और इस प्रकार गढ़वाल के भाग्याकाश में भयंकर दुखों के बादल मंडराने लगे थे। सम्वत् १८५१-५२ में समस्त गढ़वाल में घोर अन्नकाल पड़ा जिसे आज भी 'बावनी' के नाम से पुकारा जाता है और जिसकी अनेक गाथाएं और किम्वदन्तियां सदैव गढ़वाल को याद रहेंगी। सम्वत् १८६० में गढ़वाल को केन्द्र बनाकर एक प्रलयंकारी भूकम्प आया जिसकी अपार क्षति के वर्णन में लोगों का विश्वास है कि गढ़वाल की जनसंख्या एक चतुर्थांश शेष रह गई थी। उन दिनों कृपाराम डोभाल मंत्री का काम करते थे और नित्यानन्द खंडूड़ी सरकारी कार्यालय के अध्यक्ष का। उन दोनों की परस्पर फूट किसी ऐसे समय की प्रतीक्षा कर रही थी कि जब एक दूसरे पर वे हावी हो सकते। निदान कृपाराम डोभाल ने खंडूड़ी महोदय पर, गोरखा सरकार को आह्वान करने वाले हर्षदेव जोशी को रखने का अपराध लगाकर मरवा डाला और इस प्रकार राज्य के समस्त विभागों पर कृपाराम के बन्धु बान्धवों का अधिपत्य स्थापित हो गया।

नित्यानन्द खंडूड़ी के नातेदार रामा व धरणी उन दिनों फौजदार का काम करते थे जिन्हें नित्यानन्द के विनाश का पाशविक दृश्य बार-बार याद आकर दीवान कृपाराम से बदला लेने के लिए उत्तेजित करता था। वह दोनों भाई किसी ऐसे षडयंत्र की रचना में व्यस्त रहते जिसके द्वारा नित्या-

व्यस्थित राज्य गढ़वाल की सेनाएँ शत्रु के भयंकर प्रहार का सामना न कर सकीं और समस्त गढ़वाल उनके युद्ध के द्वारा लहूलुहान होगया। राज्य परिवार बचीखुची सेना को लेकर अलकनन्दा के पार चला गया और गढ़वाली लोग लगातार अपने राजा के लिए धड़ाधड़ सेना में भर्ती होते गये और इस प्रकार गोरखा सेनाओं के द्वारा अपना बध कराते रहे। बाड़हाट और चमुवा में भी गढ़वाली सेनाओं ने शत्रु का डट कर मुकाबला किया किन्तु वहां भी कुछ पेश न चली और वहां से भी उनके पांव उखड़ ही गए। निदान राजा निर्धन स्थिति में सहारनपुर पहुँचे और आभूषणादि बेचकर और कुछेक राजपूतों को साथ लेकर उन्होंने देहरादून से शत्रुओं पर धावा बोल दिया किन्तु दुर्भाग्यवश १४ मई सन् १८०५ को रणस्थल में ही राजा का बध होगया। कुंवर प्रीतमशाह कैद हो गये और पराक्रमशाह भागकर नालागढ़ चले गए। सन् १८०५ में हस्तीदल चौतरिया श्रीनगर का समस्त अधिकार प्राप्त सूबेदार बन गया और गढ़वाल में गोरखों का शासन जम गया। किन्तु काठमंडू के षडयंत्र के कारण हस्तीदल वापस बुलाया गया और उसके स्थान पर भैरों थापा गढ़वाल का शासक बन गया।

गोरखा राज्य में समस्त गढ़वाल ८४ परगनों में विभक्त किया गया था और प्रत्येक भाग पर एक-एक फौजी अफसर शासन के लिए नियुक्त था, जिसका काम सेना के वेतन आदि के लिए भूमिकर वसूल करना तथा साधारण अभियोगों का निर्णय करना होता था। वह फौजी अफसर अपने आपको प्रजावर्ग के धन और जीवन का उपभोक्ता मानकर चलते थे। भूमिकर भूमि के उत्पादन से बढ़ गया था जिसे अदा न कर सकने वाले गरीब गढ़वालियों को पशुओं के मूल्य बेच दिया जाता था और इस प्रकार सरकारी आय का यह भी उनके लिये एक न्यायोचित माध्यम बन गया था। गढ़वाली दास-दासियों के क्रय विक्रय के सम्बन्ध में एक अंग्रेज़ लेखक (मि० फ्रेजर) का विश्वास है कि गोरखा राज्य ने गढ़वाल के लगभग दो लाख नरनारियों को नीलाम के द्वारा बेचा होगा। हरिद्वार में हर की पैड़ी अंग्रेजी राज्य की सीमान्त चौकी थी जिसके समीप गोरखा राज्य की पुलीस चौकी पर मेले के दिनों ये अभागे दास दासी लाए जाते और १०)रु० से १५० रु० प्रति व्यक्ति के हिसाब से नीलाम के द्वारा बेचदिए जाते थे। सहस्त्रों गढ़वाली स्त्री पुरुष नेपाल भी भेजे गये जिनकी सन्तान अब तक नेपाल में 'गढ़वाली' के नाम से सम्बोधित होती है।

बाद प...
जाती है...
जिले की...

७. धौली—...
उसके प...
नन्दा से...
शाखाएँ...

८. बिरही—...
पूरब की...
इधर-उध...
ताल भी...
श्रीनगर...

९. नन्दाकिनी...
से मिल...

१०. पिण्डर—...
मिल गई...

११. नयार—(...
से आरम्भ...
पश्चात...

१२. रामगंगा—...
और तल्ला...
और सोना...

१३. विदासणी...
निकल कर...
मिल गई...
हुई जिला...

झील ताला...
स्थान पर, पहाड़ों...
ने निर्माण किये...
पट्टी में, (२) मह...
(४) डोडी ताल...

नन्द के सिर का पूरा-पूरा मूल्य वे दीवान कृपाराम डोभाल से चुका सकते। निदान देहरादून के फौजदार घमंडसिंह से मिलकर उन्होंने दीवान का बध करा ही दिया और इस प्रकार उनके बन्धु बान्धव भी कैद कर लिए गये। रामा तथा धरणी इसके पश्चात राज्य के सर्वेसर्वा बन गए और राजा को उन्होंने अपने हाथ की कठपुतली बना दिया था। रामा धरणी के प्रधानत्व में गढ़वाल का राजकाज अधोगति को प्राप्त हो गया था और राज्य की आय भी पर्याप्त घट चुकी थी जिसके कारण पूरे तीन वर्ष से नैपाल को दिया जाने वाला रुपया भी न चुकाया जा सका। अनेक प्रकार के कष्टों से उस समय प्रजा भी अत्यन्त दुखित हो चली थी और स्वर्गीय दीवान कृपाराम के बन्धु बान्धव उस वायु मण्डल के अन्तर्गत ऐसा कोई अवसर टटोल रहे थे कि जब रामा व धरणी का बध हो सकता। आखिर वह अवसर आ ही गया और कुंवर पराक्रम शाह को बहका कर उन्होंने रामा धरणी के विरुद्ध षडयंत्र रचा जिसके द्वारा रामा को (जो उस समय पैनखंडा की ओर गये हुए थे) घूणी रामणी में और धरणी को शीतला की रेती (श्रीनगर) में मरवा डाला गया। फिर क्या था गढ़वाल के भाग्य पर भयंकर बादलों के उमड़ने की स्थिति उत्पन्न हो गई। खंडूड़ी परिवार की एक स्त्री जिसे गीतों में "बैजू की बामणी" कहा जाता है और जो नैपाल के राजगुरु की कन्या कही जाती है, पतिवियोग से दुखी होकर रोती चिल्लाती अपने पिता के पास नेपाल गई और उसके द्वारा गढ़वाल से बदला लेने का आग्रह किया। नेपाल सरकार के पास भी तीन वर्ष से, सन्धि के अनुसार, कर अदा न होने का पर्याप्त कारण था ही इसलिए बैजू की बामणी का आग्रह उनके अनुकूल ही पड़गया।

सन् १७२६ में, विजय यात्रा के लिये भारत में आए हुए अंग्रेज़ों की, नेपाल सरकार से व्यापारिक सन्धि हुई थी और किर्कपैट्रिक नामक एक अंग्रेज नेपाल की राजधानी काठमंडू में रहने लगा था। धीरे धीरे अंग्रेज़ों ने नैपाल से मेल बढ़ाया और सन् १८०१ से मि० किर्कपैट्रिक व्यापारिक दूत के बदले अंग्रेज़ों का राजदूत बनकर काठमंडू में रहने लगा। राजनीति कुशल अंग्रेज़ उन दिनों लगातार इस धुन पर रहते कि किसी प्रकार भारतीय लोगों के अन्तर्गत विवाद उत्पन्न किये जांय क्योंकि इस प्रकार उनकी विजयकामना के लिए अनेक अवसर उनके सामने स्वतः आ जाते। अतः नेपाल की उक्त कोप दृष्टि को अंग्रेज़ों की भेदनीति का भी बल मिल गया।

फर्वरी सन् १८०३ ई० में अमरसिंह थापा और हस्तीदल चौतरिया की कमान में गोरखा सेना गढ़वाल के प्रांगण में प्रवेश हुई और गोरखा सेना का एक दूसरा दल भी अलमोड़ा से लंगूरगढ़ होता हुआ श्रीनगर आगया। अन्य-

वस्थित राज्य गढ़वाल की सेनाएँ शत्रु के भयंकर प्रहार का सामना न कर सकीं और समस्त गढ़वाल उनके युद्ध के द्वारा लहूलुहान होगया। राज्य परिवार बचीखुची सेना को लेकर अलकनन्दा के पार चला गया और गढ़वाली लोग लगातार अपने राजा के लिए धड़ाधड़ सेना में भर्ती होते गये और इस प्रकार गोरखा सेनाओं के द्वारा अपना बध कराते रहे। बाड़हाट और चमुवा में भी गढ़वाली सेनाओं ने शत्रु का डट कर मुकाबला किया किन्तु वहां भी कुछ पेश न चली और वहां से भी उनके पांव उखड़ ही गए। निदान राजा निर्धन स्थिति में सहारनपुर पहुँचे और आभूषणादि बेचकर और कुछेक राजपूतों को साथ लेकर उन्होंने देहरादून से शत्रुओं पर धावा बोल दिया किन्तु दुर्भाग्यवश १४ मई सन् १८०५ को रणस्थल में ही राजा का बध होगया। कुंवर प्रीतम-शाह कैद हो गये और पराक्रमशाह भागकर नालागढ़ चले गए। सन् १८०५ में हस्तीदल चौतरिया श्रीनगर का समस्त अधिकार प्राप्त सूबेदार बन गया और गढ़वाल में गोरखों का शासन जम गया। किन्तु काठमंडू के षडयंत्र के कारण हस्तीदल वापस बुलाया गया और उसके स्थान पर भैरों थापा गढ़वाल का शासक बन गया।

गोरखा राज्य में समस्त गढ़वाल ८४ परगनों में विभक्त किया गया था और प्रत्येक भाग पर एक-एक फौजी अफसर शासन के लिए नियुक्त था, जिसका काम सेना के वेतन आदि के लिए भूमिकर वसूल करना तथा साधारण अभि-योगों का निर्णय करना होता था। वह फौजी अफसर अपने आपको प्रजावर्ग के धन और जीवन का उपभोक्ता मानकर चलते थे। भूमिकर भूमि के उत्पादन से बढ़ गया था जिसे अदा न कर सकने वाले गरीब गढ़वालियों को पशुओं के मूल्य बेच दिया जाता था और इस प्रकार सरकारी आय का यह भी उनके लिये एक न्यायोचित माध्यम बन गया था। गढ़वाली दास-दासियों के क्रय विक्रय के सम्बन्ध में एक अंग्रेज़ लेखक (मि० फ्रेजर) का विश्वास है कि गोरखा राज्य ने गढ़वाल के लगभग दो लाख नरनारियों को नीलाम के द्वारा बेचा होगा। हरिद्वार में हर की पैड़ी अंग्रेजी राज्य की सीमान्त चौकी थी जिसके समीप गोरखा राज्य की पुलीस चौकी पर मेले के दिनों ये अभागे दास दासी लाए जाते और १०)रु० से १५० रु० प्रति व्यक्ति के हिसाब से नीलाम के द्वारा बेचदिए जाते थे। सहस्त्रों गढ़वाली स्त्री पुरुष नेपाल भी भेजे गये जिनकी सन्तान अब तक नेपाल में 'गढ़वाली' के नाम से सम्बोधित होती है।

जनता का धन और सुन्दर स्त्रियों का अपहरण गोरखा शासकों के लिए साधारण काम था। अतः उनके आने की सूचना पाकर लोग धन को भूमि

में गाड़ देते थे और स्त्रियां जंगलों में जा छिपती थीं। गढ़वाल की पर्याप्त जनता अपना घर बार छोड़कर जंगलों में ही निवास करने लगी थी और इस प्रकार गोरखों की पाशविकता का सर्वत्र आतंक जमा हुआ था।

कुछ ही समय के पश्चात् गोरखों ने अपनी शासन व्यवस्था को सुदृढ़ एवम् विकसित बनाने के लिए गढ़वाल के थोकदारों को भी अपने शासन यंत्र में सम्मिलित कर लिया और तब से उनकी बर्बरता और पाशविक अत्याचारों में १९-२० का अन्तर हो गया था। किन्तु फिर भी गढ़वाल की जनता उन दुष्टों से अपने परित्राण का उपाय सोचती रहती थी।

भारत के तत्कालीन गवर्नर लॉर्ड हेस्टिंग्स गोरी फौजों को हिन्दुस्तान के गर्म भागों की प्रचण्ड गर्मी से बचाने के लिए हिमालय में यत्र तत्र छावनियां बनाने की योजना पर विचार कर रहे थे किन्तु कुमाऊँ के पूर्वी छोर से लेकर कांगड़ा पर्यन्त समस्त हिमालय पर गोरखा अधिपत्य होने के कारण उन्हें ऐसे किसी अवसर की प्रतीक्षा थी कि जब गोरखा लोगों पर वैधानिक रूप से युद्ध करने के लिए पर्याप्त कारण उनके पास जमा हो जाते।

गढ़वाल के गोरखा शासक राज्य के मद में अन्धे हो चले थे और इसलिए अपनी सीमाओं पर अंग्रेज़ों से भी उन्होंने छेड़खानी आरम्भ करदी थी। कई स्थानों पर अंग्रेजी पुलीस चौकियों के अफसरों को भी उन्होंने अत्यन्त निर्दयता से मार डाला था इसलिए लॉर्ड हेस्टिंग्स ने विजय यात्रा के कार्यक्रम को पूर्णतया वैधानिक रूप देने के लिए नेपाल के युवा राजा को समझौते का एक पत्र लिखा किन्तु उन्हें उस पत्र का अहंकार पूर्ण उत्तर मिला। इधर गढ़वाल के राजा सुदर्शनशाह ने भी ईस्ट इंडिया कम्पनी से सहायता की प्रार्थना करदी। निदान ता० १ नवम्बर १८१४ को अंग्रेजों ने गोरखों से युद्ध की घोषणा करदी।

घमासान युद्ध हो गया। चार विभिन्न स्थानों और दिशाओं से गोरे सिपाही अपनी बन्दूकों व तोपों की ठांय ठांय की गगनभेदी गड़गड़ाहट द्वारा हिमालय की घाटियों में सुन्दर छावनियों का स्थान ढूंढने लगे। राजा सुदर्शनशाह गोरे और गोरखों के रक्त से रंगने वाली गढ़भूमि पर अपने उज्ज्वल भविष्य का रेखांकन करते हुए उत्सुकता पूर्वक उस समय की प्रतीक्षा करने लगे कि जब वे गढ़वाल के सुरम्य पर्वतों को चीरते हुए देहरादून से एक विजेता की तरह अलकनन्दा की घाटी में प्रवेश होते और इधर गढ़वाल की जनता अपने घरों की छतों पर उचक-उचक कर देखने लगी कि गोरखों के अत्याचारी शासन से मुक्ति दिलाने वाली शुभ घड़ी उनके द्वार खटखटा रही है। कहा जाता है कि गढ़वाली लोगों ने भी गोरखा शासन के द्वारा प्रज्वलित

क्रोधाग्नि को शान्त करने के लिए उस समय उनसे खूब ही बदला लिया और इस प्रकार चारों ही ओर से घिरे हुए गोरखा लोग गढ़वाल की मलिनता का अपने सहकर्मियों के रक्त से प्रक्षालन कर भाग खड़े हुए। उस युद्ध में सरकार अंग्रेज ने भी पर्याप्त हानि उठाई किन्तु इसके बदले में उन्हें मिला हुआ लाभ उनके आंसू पोंछ गया।

कहा जाता है कि गोरखों के साथ युद्ध करने के लिए राजा सुदर्शन शाह ने कार्यरूप में कुछ भी नहीं किया था, इसलिए सन् १८१५ में लड़ाई की समाप्ति पर उनसे युद्ध-व्यय का कुछ भाग (लगभग पाँच लाख रुपये) माँगा गया, किन्तु उनकी आर्थिक अवस्था ऐसी नहीं थी कि उस रकम की अदायगी हो सकती। निदान यह निश्चय हुआ कि पूर्वी गढ़वाल युद्ध-व्यय के बदले अँग्रेज़ों को दे दिया जाय। जिला देहरादून पहले ही अँग्रेज़ी राज्य में मिला लिया गया था। अतः इस पर गढ़वाल का भी अंग भंग किया गया और भिन्न-भिन्न पद्धतियाँ गढ़वाल पर राज्य करने लगीं।

अब राजा सुदर्शन शाह अपनी राजधानी को श्रीनगर से उठाकर पश्चिम की ओर, ३० मील की दूरी पर, भागीरथी और भिलंगना नदी के, संगम पर, टिहरी ले गये और ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत एक साधारण-सी रियासत के रूप में गढ़वाल राज्य का रूपांतर हो गया।

राजा सुदर्शन शाह का राज्यकाल पश्चिमी गढ़वाल के लिए पर्याप्त सन्तोषजनक सुना गया है। सन् १८५७ ई० की गदर के समय उन्होंने तन-मन, धन और जन से अँग्रेज़ों का साथ दिया जो कि उनकी परिस्थितियों के अनुकूल ही था और नवाब नजीबाबाद की बहकावट और धमकी पर भी उन से अँग्रेज़ों का प्रेम सँवरण न हो सका। गढ़वाल के समस्त जागीरदार व थोकदार भी गदर के समय राजा सुदर्शन शाह के साथ रहे। अँगरेज़ी गढ़वाल में गदर के समय मि० बेकेट का शासन था, जिन्होंने गढ़वाल की समस्त घाटियों और चौकियों पर पहरे बिठा दिये थे और श्रीनगर में हुई एकाध साधारण-सी घटनाओं के लिए गोरखा सिपाहियों की दो कम्पनियों को श्रीनगर के पहरे पर बिठा दिया था।

राजा सुदर्शन शाह के पश्चात उनके टीका भवानीशाह को गढ़वाल राज्य की गद्दी मिली, यद्यपि भवानीशाह के विमात्रिज बन्धु शेरशाह इसके लिए कई वर्षों तक खींचा-तानी करते रहे और उन्होंने प्रजा वर्ग में बड़े-बड़े उपद्रव और आंदोलन भी मचाये। राजा भवानी शाह अधिक पढ़े-लिखे नहीं थे, किन्तु उनके राज्य में विद्वानों का बड़ा आदर होता था। उनका राज्य भी सन्तोषजनक सुना गया है।

सन् १८७१ ई० में राजा प्रतापशाह गद्दी पर बैठे। उन्होंने गढ़वाल राज्य में अंग्रेज़ी भाषा का प्रचार कराया और पुलीस, जंगलात और अदालतों आदि की अच्छी व्यवस्था कराई। इनके राज्यकाल में राज्यकर्मचारियों के पारस्परिक मनोमालिन्य के कारण कुछ उपद्रव हुए किंतु १८८६ में इनके स्वर्गवास के पश्चात स्थिति को काबू कर लिया गया। इनके नाम से प्रताप नगर बसाया गया था।

सन् १८९२ ई० में राजा कीर्तिशाह को गद्दी मिली। इनके पिता की मृत्यु के बाद पूरे छ: वर्ष तक इनकी माँ रीजेण्ट महाराणी गुलेरी के हाथ में शासन प्रबन्ध रहा; जिन्होंने तीन सदस्यों (श्री शिवदत्त डंगवाल, श्री केवलराम रतूड़ी और श्री विश्वेश्वर दत्त सकलानी) की एक कौंसिल अपनी सहायता के लिए नियत की थी। कहा जाता है कि उत्तर-प्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल (लेफ्टिनेण्ट गवर्नर) ने टिहरी जाकर कौंसिल ऑफ रिजेन्सी का निरीक्षण किया था और महाराणी के शासन की भूरी-भूरी प्रशंसा की थी।

राजा कीर्तिशाह एक विद्वान राजा थे। उन्होंने अपने राज्यकाल में शासन का काम अत्यन्त दक्षता और बुद्धिमत्ता से चलाया, साथ ही राज्य में अंगरेज़ी तथा हिन्दी शिक्षा का खूब प्रचार किया। शासन में प्रत्येक दृष्टिकोण से नवीनता लाने तथा अपनी राजधानी में जल तथा विद्युत लाने का भी उन्हीं को श्रेय प्राप्त है। उनके नाम से बिलोली नामक स्थान का नाम कीर्तिनगर रक्खा गया। अप्रैल १९१३ में आपकी जीवन-यात्रा की समाप्ति हुई।

राजा कीर्तिशाह के स्वर्गवास के समय उनके टीका नरेन्द्रशाह की आयु केवल १६ वर्ष की थी और अभी वे विद्याध्ययन ही कर रहे थे। इसलिए पोलिटिकल एजेण्ट की देख-रेख में राज्य का कार्य एक अँगरेज़ रेजीडेण्ट के हाथ दिया गया और टीका साहब नरेन्द्रशाह के, मेयो कॉलेज अजमेर से वापस आने तक उसी प्रकार चलता रहा। सन् १९१६ में राजा नरेन्द्रशाह राजगद्दी पर बैठे और तभी से समस्त भारतवर्ष में कांग्रेस का ज़ोर भी आरम्भ हो गया।

राजा नरेन्द्रशाह (जिन्हें पीछे महाराजा भी बनाया गया) का राज्यकाल पश्चिमी गढ़वाल के लिए विशेष अच्छा न रहा। इनके समय में 'रवाईं काण्ड' की घटना एक ऐसी घटना हुई 'जिसे उनकी प्रजा कदापि न भुला सकेगी। कहा जाता है कि तत्कालीन दीवान रायबहादुर चक्रधर जुयाल ने निहत्थी जनता पर गोली छुड़वाकर अनेक प्रजाजनों को मरवा डाला था और गावों के बहुत से घर भी जला दिये थे जिससे पशुओं तक की वहाँ पर्याप्त

हानि हुई। राज्य गढ़वाल में कई बार के बन्दोबस्तों में उन दिनों भूमिकर उत्तरोत्तर बढ़ाया जाता रहा और अनेक प्रकार के कर स्थापित किये गये जिन से वहाँ की प्रजा बेचैन हो गई। 'पौनटोटी' नामक कर के द्वारा वहाँ की प्रवासी जनता को राज्य में प्रवेश होने के समय अपनी तलाशी देकर नये कुर्ते-पैजामों और दूसरे सिले हुए कपड़ों पर भी दो-दो या चार-चार आने टैक्स देना पड़ता था। यहाँ तक कि अपनी आजीविका के लिए अपनी पीठ पर गंगाजल के घड़े समस्त भारत में ले जाकर बेचने वाले पण्डों तक को अपनी कमाई का पौनटोटी टैक्स टिहरी राज्य को देना पड़ता था। महाराजा नरेन्द्रशाह के ही शासन काल में प्रभुसेवा के नाम पर जनता से ऋषीकेश-कीर्तिनगर मोटर सड़क बनवाई गई जिस पर लगातार अब तक बाह्य मोटर-कम्पनियाँ एकाधिकार रखती हैं। राज्य के समस्त जंगल इस प्रकार बन्द कर दिये गये कि ग्रामीणों के तद्विषयक अधिकारों की सरासर अवहेलना होने लगी और जंगलों की घास-लकड़ी के लिए उपयोग करने वाली प्रजा पर कर लग गये। निदान टिहरी राज्य में भी कांग्रेस का आविर्भाव होने लगा और प्रातःस्मरणीय श्रीदेव सुमन उसका प्रतिनिधित्व करते हुए जनता के न्यायोचित अधिकारों का प्रश्न लेकर यत्र-तत्र घूमने लगे। टिहरी राज्य तथा प्रवासी गढ़वालियों के अन्तर्गत फैलने वाले कांग्रेसी प्रभाव को रोकने के लिए महाराजा नरेन्द्रशाह ने बड़ा परिश्रम किया। अलकनन्दा के निकटवर्ती प्रजा पर रोक लगा दी कि पूर्वी गढ़वाल में हो रहे कांग्रेस अधिवेशनों में भाग न ले सके, कॉलेज के शिक्षार्थियों को सज़ाएँ दीं, सुमन जी पर प्रतिबन्ध लगे और कई अन्य कार्यकर्ताओं की धर-पकड़ की। किंतु कांग्रेस के शक्तिशाली वायुवेग को रोकना उनके बूते की बात नहीं थी। निदान सुमन जी को पकड़कर ३० दिसम्बर १९४३ को कारावास में बन्द कर दिया गया। सुमन जी ने प्रार्थना की कि सरकारी व्यवहार के औचित्य और वैधानिकता जानने के लिए उन्हें किसी योग्य वकील की नियुक्ति का अधिकार दिया जाय, किंतु टिहरी राज्य उनकी राष्ट्रीयता को ऐसे एक पैमाने से नाप रहा था जो उसके शासनयन्त्र के अन्तर्गत विनाश के लिए उत्पन्न हुई अनैतिकता से बना हुआ था। इसलिए सुमन जी की प्रार्थना पर कोई विचार न हुआ और उन्हें दो वर्ष का कठिन कारावास कर ही दिया गया। सुमन जी ने टिहरी राज्य की इस धाँधली और जेल अधिकारियों की पाशविकता के विरोध-स्वरूप ३ मई १९४४ से भूख हड़ताल आरम्भ कर दी और २५ जुलाई १९४४ को टिहरी की राजगद्दी पर ब्रह्महत्या का कलंक लगाकर वे परम धाम को चले गये। उनके पश्चात श्री मोलूसिंह तथा श्री पैन्यूली भी

टिहरी राज्य को उनके अस्तित्व की समाप्ति का सन्देश देने के लिए १६४८ में शहीद हुए।

जुलाई १६४६ में भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य मिला। महाराजा नरेन्द्रशाह परिस्थितियों की कोप दृष्टि को भाँपकर राजसत्ता से, उसके कुछ ही समय पश्चात, पृथक हो गये और युवराज मानवेन्द्र शाह को टिहरी का राज्य दे दिया गया। सुमन जी के द्वारा सुझाये मार्ग पर चल रहे टिहरी राज्य प्रजामण्डल ने अपना कार्य न छोड़ा और दिन-ब-दिन प्रजा में राजनीतिक चेतना उत्पन्न की जाती रही। श्री दौलतराम प्रभृति सज्जन इस कार्य में तन्मय रहे और निदान समस्त राज्य पर सन्, ४८ से प्रजामण्डल का अधिकार हो गया। महाराजा ने भारतीय यूनियन में अपने राज्य के विलयनीकरण के लिए दिल्ली में आकर ता० १ अगस्त १६४६ को हस्ताक्षर कर दिये। उसके पश्चात् टिहरी राज्य उत्तर प्रदेश का एक पृथक ज़िला बना दिया गया और महाराजा को अब अपने तथा अपने परिवार के खर्च के लिए लगभग पाँच लाख रुपये सालाना दिया जाता है। महाराजा नरेन्द्र शाह का सितम्बर, ५० में मोटर दुर्घटना से शरीरान्त भी हो गया।

इधर पूर्वी गढ़वाल के सीमांत का राजनीतिक महत्त्व अनुभव कर कुटनीतिज्ञ अंग्रेज़ आरम्भ में ही जान गये कि उन्हें गढ़वाली की सैन्य प्रकृति, भोलेपन, गरीबी व भूख तथा स्वामी-भक्ति का किस प्रकार उपयोग करना होगा। भविष्य में जनता की सम्भावित उन्नति और भाव-परिवर्तन पर काबू रखने के लिए उन्होंने गढ़वाली राजनीति का ऐसा एक कार्यक्रम बना छोड़ा जिससे नवागन्तुक अँग्रेज ज़िलाधिकारी क्षण मात्र में ही गढ़वाली मनोविज्ञान को समझ ले और गढ़वालियों को अँग्रेज़ी राज्य की आवश्यकतानुकूल रखने के उपाय भी स्वयं ही बना ले। गढ़वाल के कुछेक जानकार और समृद्ध लोग क्रमशः ऊँचे-ऊँचे पदों तथा उपाधियों से बिभूषित किये जाने लगे और इस प्रकार अंग्रेज़ी गढ़वाल में शासन चलने लगा।

गढ़वाल हिन्दू जगत का धार्मिक गढ़ था और धार्मिक भावना के कारण गढ़वाली मात्र अत्यन्त सरल स्वभाव और सादा जीवन व्यतीत करने वाले होते थे। अतः उनके धार्मिक विश्वास की दीवालों को हिलाने और उन्हें अपव्ययी और तदनुसार भूखा बनाने की योजना पर विभिन्न दृष्टिकोण से विचार होने लगा। अपने आगमन के कुछ ही समय पश्चात् अंग्रेज लोग पर्याप्त सुविधाएं देकर ईसाई मिशनरियों को गढ़वाल में लाये और इस प्रकार गढ़वाल के साधारण वातावरण में एक नवीन आकर्षण का प्रादुर्भाव हुआ। यद्यपि मिशन के कार्य से गढ़वाल में अंग्रेजी पढ़ने की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई और इससे

गढ़वाल का कई अंशों में लाभ ही हुआ, किन्तु उनके प्रचार से (जिसका मौलिक अर्थ अंग्रेज साम्राज्यवाद का प्रचार था) हिन्दूपन की खुली भर्त्सना सुनकर प्रत्येक वर्ण के गढ़वाली अपना पृथक अस्तित्व मानने और वर्णों के पारस्परिक सम्बन्ध की कानाफूसी करने लगे। फलतः गढ़वाल के हिन्दू परिवार में पारस्परिक द्वेश का सूत्रपात होगया और गढ़वाल की सर्वांगीण उन्नति का प्रश्न भी क्रमशः लोप होगया।

इधर नौकरियाँ तथा उपाधियां प्रदान करने में गढ़वाल की सरकारी व्यवस्था की परछाईं में अंग्रेज मदारी की, कठपुतलियाँ नचाने वाली उंगलियाँ तीव्र गति से काम करने लगीं जिससे सरकारी नौकरियों या बड़े-बड़े पदों पर वर्णयुद्ध के योद्धाओं का आधिक्य होने लगा और इस प्रकार ब्राह्मण राजपूत के प्रश्न को भी गढ़वाल के सामाजिक गठन के छिन्न-भिन्न करने के लिए मूर्त रूप मिल गया। यह अवश्य कहा जा सकता है कि जातीय प्रश्न सदैव ऐसे लोगों के द्वारा उठाये गये, जो योग्य न होते हुए किसी पद की खींचातानी में व्यस्त रहे और यह भी स्पष्ट है कि डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और प्रान्तीय कौंसिलों तथा धारा सभाओं के सदस्य निर्वाचन काल से समस्त जिले में इस साम्प्रदायिक द्वेष का प्रचार हुआ। अन्यथा इसकी सीमा सरकारी दफ्तरों के इर्द-गिर्द से अधिक नहीं थी। आज भी इसका फैलाव कुछेक चतुर और विद्रोही प्रवृत्ति के लोगों में ही है और गढ़वाल के उच्च परिवार (जो वास्तव में ऊंचे हैं) अब तक इससे अछूते चले आते हैं।

गढ़वाल सदैव सैनिकों के उत्पादन का क्षेत्र रहे अथवा गढ़वाली को एक सैनिक की स्थिति से कदापि ऊपर न उठाया जाय यही अंग्रेजी राज्य की नीति रही है और इसके लिए उन्होंने सदैव गढ़वाल की शिक्षा और सार्वजनिक उन्नति के प्रश्न पर अहिन्दू दृष्टिकोण को विशेष प्रोत्साहन दिया और ब्राह्मण राजपूत को अलग-अलग रखने तथा जनता व सरकार के बीच की कड़ी बने रहने का काम सर्वांशतः अल्प संख्यकों के आधीन रखा गया। राज्य गढ़वाल में साम्प्रदायिक प्रश्न की उत्पत्ति न हो सकी क्योंकि समाज संगठन धार्मिक पद्धति पर न होकर राजनीतिक रूप में ही रहा। अपने शासन के अन्तिम समय पर टिहरी की राजगद्दी के द्वारा इसकी प्रेरणा की गई किन्तु इसके लिए वहां सामग्री नहीं थी।

गढ़वाल और अलमोड़ा के अन्तर्गत राजाओं के शासनकाल में प्रायः युद्ध होते रहे और इस प्रकार इन दोनों जिलों के मनोविज्ञान में प्राकृतिक रूप से ही परस्पर द्वेष की भावना बन गई। इस भावना को यथारूप जागृत रखने और उसका लाभ उठाने की भी अंग्रेज सरकार ने कोशिश की और इसके लिए

नवागन्तुक ब्राह्मणों के सम्मिश्रण से बने हुए कहे जाते हैं। सरोला और गंगाड़ी जाति का खान-पान रीत रिवाज और रहन सहन एक सा ही है। अन्तर केवल इतना है कि सरोला जाति के द्वारा बनाया गया कच्चा भोजन सभी जाति के हिन्दू लोग खालेते हैं जबकि गंगाड़ी जाति का यह अधिकार केवल अपने सम्बन्धियों तक ही सीमित है यह सब जातियां गांवों के हां नाम से प्रायः प्रचलित हुई हैं। जैसे थापली के थपलियाल, बुघाणी के बहुगुना, डोभा के डोभाल और नैथाना के नैथानी आदि। सरोला और गंगाड़ी जाति के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वे पंवार वंशीय राजाओं के पुरोहितों के रूप में यहां आए और पहले पहल चांदपुर गढ़ के निकट बसे। सरोलाओं के आज भी १२ थान (स्थान-गांव) माने जाते हैं जो कि क्रमशः नौटी, मैटवाणा, खंडूड़ा, रतूड़ा, थापली, चमोला, सेमा, लखेड़ी, सेमल्टा (गैरोली), कोटी व डिम्मर हैं। पंवार वंशीय राज्य के फैलाव के साथ ही सरोला लोग भी इधर उधर और गढ़वाल के निचले हिस्से में भी आकर बसने लगे और इस समय चारों ओर विद्यमान हैं। पहिले पहल चांदपुर गढ़ से नीचे की ओर गंगा की घाटी में आकर बसे हुए ब्राह्मण गंगाड़ी कहलाए जाने लगे थे और अब शादी के लिए कन्याओं के अभाव के कारण या अन्य किन्ही परिस्थितियों में गंगाड़ी ब्राह्मणों की लड़कियों से विवाह किये हुए सरोला लोग भी गंगाड़ी गिने जाते हैं। अतः सरोला जातियां प्रायः अपनी ही जाति में (जैसे नौटियाल, नौटियाल के साथ) विवाह सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं और इस प्रकार कच्चे भोजन की पवित्रता के लिए सरोला परिपाटी को जीवित रखा गया है।

गंगाड़ी जाति के अनेक विभाग हैं जिन का क्रम राजा की सेवा के विभिन्न कार्यों द्वारा स्थिर हुआ है। बुघाणा (बहुगुना), डंगवाल, डोभाल और उन्याल जाति के लोग राज्य के अहलकार और दरबारी रहे हैं इस लिए इन चारों जातियों को 'चौथोकी' कहा जाता है और चौथोकी ब्राह्मणों का एक विशिष्ट स्थान माना जाता है।

इनमें से कुछ लोग अपने को 'दीवान' भी कहते हैं क्योंकि गढ़वाल राज्य में बहुधा यह लोग दीवान रहे हैं। राय बहादुर दीवान चक्रधर जुयाल के दीवान होने के समय से गढ़वाल की जुयाल जाति भी अपने को 'दीवान' समझने लगी है। गढ़वाल की अन्य गंगाड़ी जातियाँ भी दीवान बनने की खींचातान करतीं, किन्तु अब गढ़वाल राज्य ही समाप्त होगया।

गढ़वाल के नाना गोत्री ब्राह्मणों की भी कई शाखाओं में विभक्त पाया जाता है। किन्तु अब जातीय प्रश्न पर लोगों में काफी उदारता आगई है

और इसलिए छोटे बड़े का प्रश्न प्रायः समाप्त होता जा रहा है। अपनी ही उपजातियों को छोड़कर अब नानागोत्री ब्राह्मणों के शादी विवाह गंगाड़ी जातियों से भी होने लगे हैं और इस प्रकार नानागोत्री तथा गंगाड़ी ब्राह्मणों के बीच का अन्तर समाप्त होता जा रहा है।

देव प्रयागी पण्डे भी ब्राह्मण जाति की ही एक शाखा हैं और सरोला जाति की ही तरह इन्होंने भी अपना फैलाव अत्यन्त सीमित रखा है। यह लोग गंगाड़ी जाति की लड़कियों से विवाह तो कर लेते हैं किन्तु उन्हें अपनी लड़कियां नहीं देते और न उनके साथ उनका खान पान ही मिलता। घर जवांई या धर्मपुत्र अलबत्ता दूसरी गंगाड़ी जातियों से, अपनी आवश्यकता के अनुकूल, लेकर देव प्रयागी लोग उसे भी पण्डा बना लेते हैं।

कुमाऊं से भी पन्त, पांडे, तिवाड़ी, मिस्सर और जोशी जाति के लोग राजाओं के राज्यकाल में, दो-ढाई सौ वर्ष पूर्व, गढ़वाल में आकर बसे हैं। इन लोगों का खानपान और शादी-विवाह भी गंगाड़ी और अन्य सभी प्रकार के ब्राह्मणों से समान रूप में चलता है कहीं कहीं इन कुमावनी जातियों को अब तक पुर्विया कहा जाता है।

ब्राह्मण जाति का गढ़वाल में एक और भी विभाग है जिन्हे मल्डा या भैड़ा कहते हैं। यह जाति प्रायः शिवजी के मन्दिरों का शिवांश लेती रही है जिसे हिन्दू दृष्टिकोण से ब्राह्मणों का काम नहीं माना जाता। किन्तु अब ये लोग भी उन्नति करते जा रहे हैं और भट्ट आदि अनेक जातियों में प्रविष्ट होकर अब उनका स्थान ऊपर उठता जा रहा है।

क्षत्रिय जाति के सम्बन्ध में, मनु के अनुसार यहाँ पौंड्राक, औंड्र, द्रविड, कम्बोज, यवन, शक, पारद, पल्हव, चीनी, किरात, सरद, और खस नामक बारह विभिन्न विभागों का वर्णन मिलता है। गढ़वाल में आर्य जातियों के प्रवेश से पूर्व खस जाति के क्षत्रियों का राज्य रहा है और इसलिए गढ़वाल में राजपूत भी दो प्रकार के (असली राजपूत और खस राजपूत) हैं। असली राजपूत नवागन्तुक आर्य जाति के माने जाते हैं जिनका प्रवेश गढ़वाल में आठवीं तथा नौवीं शताब्दी में या उसके बाद माना जाता है और खस राजपूत खसिया जाति और नये आये हुए राजपूतों के सम्मिश्रण से बनी हुई जाति है। ब्राह्मणों की तरह इन दोनों जातियों में भी परस्पर ऊँच नीच का भेद था। बल्कि असली राजपूत जनेऊ धारी होते थे और खस राजपूतों को जनेऊ पहिनने का अधिकार न होता था। किन्तु कालान्तर में उनका वह भेद भाव केवल आर्थिक दृष्टि से ही असमानता का सूचक बना रहा और होते होते वह प्रायः लोप होता जा रहा है। सन् १९१४-१८ के महायुद्ध में

गढ़वाल की यह दोनों क्षत्रिय जातियाँ समान रूप में ही भर्ती हुई और पदों और उपाधियों से भी समान रूप में ही विभूषित हुईं। इसलिए खस राजपूतों के नीचा होने का कोई भी प्रमाण शेष न रहा। अब वे सब लोग भी जनेऊधारी होते जा रहे हैं और खस राजपूत कहलाना अब कोई भी एक अपमान सूचक शब्द मानता है और प्रत्येक राजपूत अपने को ठाकुर कहता है। गढ़वाल की वर्णव्यवस्था को इन दो जातियों का भेदभाव मिटने से लाभ ही हुआ है।

राजपूतों की बिष्ट, नेगी, कमीण, भंडारी, गुसाईं, रावत आदि जातियां ग्रामीण नामों से प्रचलित न होकर गढ़वाल राज्य के दरबार से मिले हुए पद हैं। बिष्ट, नेगी, कमीण ये सिविल के पद थे। भंडारी अन्न का भण्डार रखने वाले या खजांची को कहा जाता था और रावत गोसाईं आदि फौजी अफसरों के पद होते थे। यह सब पद खानदानी होने के कारण कालान्तर में जातियों के नाम बन गये हैं।

कनैत, सुनार, कलाल, नाई, कुम्हार, बोहरा, नायक, झींवर और गृहस्थी-नाथ आदि जातियां भी आज राजपूतों की ही समानता या पंक्ति में आगई हैं किन्तु वास्तव में यह लोग राजपूत नहीं हैं और न असली राजपूतों का इनके साथ शादी-विवाह या खानपान ही चलता है। यह लोग विभिन्न आजीविका साधनों को करते हुए हिन्दू जाति की सेवा किया करते थे और परिवर्तन के इस युग में अब सामाजिक प्रगति की ओर इनका रुख है।

गढ़वाल के हरिजन भी अनेक भागों में विभक्त हैं। इन्हें गढ़वाल के आदिम-निवासियों की सन्तान कहा जाता है। विभिन्न पेशों में काम करते रहकर इनकी जातिसंज्ञाएं बन गई हैं और इनमें भी परस्पर ऊंच नीच का सवाल विद्यमान है। कोली जाति का पकाया हुआ कच्चा भोजन सभी जाति के हरिजन खा सकते हैं और अन्य जातियों के इस अधिकार की सीमा केवल अपनी ही जाति तक होती है। प्राचीन काल में इन लोगों को डोम कहा जाता था, आंग्ल युग में इन्हें शिल्पकार कहा गया और इनमें से काफी लोग आर्य समाज में दीक्षित होकर आर्य कहलाने लगे। अब गांधी युग में इन सब का नाम हरिजन होगया और हरिजन की भाँति इनके साथ व्यवहार भी होने जा रहा है।

वर्ण व्यवस्था के उक्त ढाँचे से गढ़वाल की धार्मिक या सामाजिक अभिवृद्धि हुई हो यह हो सकता है किन्तु आज के बुद्धिजीवी युग में जाति-पाँति का भेद भाव अथवा उसके साथ जुड़े हुए छूत-छात और ऊंच नीच के प्रश्न गढ़वाल के संगठन और ऐक्य के लिए भयंकर सिद्ध हुए हैं और यह निश्चित

कुकरेती	☆	द्राविड़	विलहित	१४०६	मूल पुरुष गुरुपति
कुड़ियाल	☆	गौड़	बंगाल	१६००	
कैंथोला	☆	गुजराती भट्ट	गुजरात	१६६६	मूल पुरुष राम विमल
कैलखोरा	★				
कोटनाला	★	गौड़	बंगाल	१७२९	
कोटियाल	★				देवप्रयागी पण्डे
कोटवाल	★				
कोठारी	★	शुक्ल	बंगाल	१७६१	मूल पुरुष कुमारदेव
कौस्वाल	★	गौड़		१७२२	
कौठ्याल	★	गौड़			
कटैत	❁	कटोच	कांगड़ा		
कफोला बिष्ट	❁	यदुबंशी	कम्पीला		
कफोला रावत	❁				
कंडियाल	❁				कांडी गांव में बसने से
कंडी गोसाईं	❁		मथुरा के समीप	४२८	यह जाति कंडारीगढ़ राज परिवार की मालूम होती है।
कड़वाल रावत	❁				
कमीण	❁				कमीणाई से
कलूड़ा	❁				कल्लू नामक मूल पुरुष के नाम से

जाति का नाम		पूर्व जाति	कहां से आये	आने का सम्वत	विशेष
कनैत	❁	खसिया	पंजाब के पहाड़ों से		
कयाड़ा रावत	❁	पंवार		१४५३	
कलाल	❁				प्राचीन काल में मद्य बनाते थे
काला भंडारी	❁		काली कुमाऊं		
कुम्हार	❁				पहिले मिट्टी के बर्तन बनाते थे
कुरमणी	❁				कुर्म नामक मूल पुरुष के नाम से
कुंवर	❁	परमार	धार गुजरात	९४५	यह पवांर वंश की उपशाखा है।
कैंत्यूरा	❁	कैंत्यूरा	कुमाऊँ कैंत्यूर		
कोल्ला रावत	❁				
कोल्या नेगी	❁		कुमायूँ		कोल्ली गाँव में बसने से
कुम्हार	⌧				बर्तन बनाने का काम करते हैं।
कोली	⌧				यह बुनने का काम करते हैं।
कोलाई-तेली	⌧				कोल्हू चलाते हैं।
कोल्टा	⌧				हल जोतने का काम करते हैं।
खंडूड़ी	★	गौड़	वीरभूम	९४५	मूल पुरुष सारंधर महेश्वर
खड़खोला नेगी	❁	कैंत्यूरा	कुमायूँ	११६६	खड़खोला गाँव में बसने से

खड़क्वाड़ी नेगी	✿		मायापुर		
खत्री नेगी	✿				
खाती गोसाईं	✿				
खूँटी नेगी	✿	मियाँ	नगरकोट कांगड़ा	११११	खूँटी गाँव में बसने से
गजल्डी	★	गौड़	धार मालवा	६४५	नौटियाल जाति की उपशाखा
गुजराती	★				देवप्रयागी पण्डे
गैरोला	★	आद्य गौड़		६७२	मूल पुरुष जयानन्द-विजयानन्द थे।
गोदुड़ा	★	भट	दक्षिण	१७१८	मूल पुरुष गोदू
गगवाड़ी नेगी	✿		मथुरा के समीप	१४७६	गगवाड़ा गाँव में बसने से
गुराढी रावत	✿				
गोरला रावत	✿	पवांर	गुजरात	८१७	
गोविणा रावत	✿	पवांर			गोबनीगढ़ में बसने से
गृहस्थी नाथ	✿				
घणसाला	★	गौड़	गुजरात	१६००	मूल पुरुष मग्नदेव
घिल्डियाल	★	आद्य गौड़	गौड़ देश	११००	मूल पुरुष लुत्थमदेव गङ्गदेव
घंडयाली रावत	✿				
घुड़दोड़ा गुसाईं	✿				
चंदोला	★	सारस्वत	चन्दौसी	१६३३	मूलपुरुषलूथराजपंजाबसेचंदोसीऔरफिरगढ़वाल
चमोली	★	द्राविड़	रामनाथ बिलहित	६८२	मूल पुरुष धरणीधर, हरमी, विरमी

जाति का नाम		पूर्व जाति	कहां से आये	आने का सम्वत	विशेष
चांदपुरी	★	गौड़	धार मालवा	९४५	नौटियाल जाति की उपशाखा
चौक्याल	★				यह जाति पीछे मिलाई गई
चन्द	❁		कुमाऊँ	१६१३	कुमाऊँ के चन्द राजाओं की सन्तान
चमोला बिष्ट	❁	पवांर	उज्जैन	१४४३	चमोली में बसने से
चिन्तोला नेगी	❁		चिंतोलगढ़		
चोंपड़िया नेगी	❁		हस्तिनापुर	१४४२	चोपड़ा गांव में बसने से
चौहान	❁	चह्वान	मैनपुरी		ठाकुरी सरदारोंकी संतान हैं इनका उप्रगढ़ था
चमार	⌧				चमड़े का काम करते हैं
छिपा	⌧				कपड़ा छपाई करते हैं।
जसोला	★				
जुगड़ाण	★	पांडे	कुमाऊं	१७००	
जुयाल	★	महाराष्ट्र	विलहित दक्षिण	१७००	मूल पुरुष वसुदेव विजयानन्द
जैस्वाल	★				यह जाति पीछे मिलाई गई
जोशी	★	द्राविड़	कुमाऊं	१७००	
ज्योशी	★				देवप्रयागी पण्डे
जम्वाल नेगी	❁	मियाँ	जम्मु		

जयाड़ा रावत	❁		दिल्ली के समीप		जयाड़गढ़ में बसने से
जरदारी नेगी	❁				
जवाड़ी रावत	❁				जवाड़ी गांव में बसने से
जस्कोटी	❁		सहारनपुर		जसकोट गांव में बसने से
जेठा रावत	❁				
जोगी	⌧				भीख माँगते व खेती करते हैं
झिक्वाण रावत	❁				
झिवर	❁				पंजाब से आकर थोड़े समय पूर्व बसे
डंगवाल	★	द्राविड़	सन्तोली कर्नाटक	६८२	मूल पुरुष धरणीधर थे
डबराल	★	महाराष्ट्र	दक्षिण	१४३३	मूल पुरुष रघुनाथ विश्वनाथ
डिमरी	★	द्राविड़	सन्तोली कर्नाटक		मूल पुरुष राजेन्द्र बलभद्र
डोभाल	★	कान्यकुब्ज		६४५	मूल पुरुष कर्णजीत
ड्योंडी	★				ड्योंड गांव में बसने से जाति संज्ञा बनी
ढंगवाल	❁				डांग गांव में बसने से
ढंगाण	★	गौड़	धार मालवा	६४५	गौंटियाल जाति की उपशाखा
ढौंडयाल	★	गौड़	राजपूताना	१७१३	मूल पुरुष रूपचन्द
ढलोटी	⌧				बर्तन ढालने का काम करते हैं
ढाकी-कुमरिया	⌧				नाचने गाने का काम करते हैं
तिवाड़ी	★				देवप्रयागी पण्डे

जाति का नाम		पूर्व जाति	कहाँ से आए	आने का सम्वत्	विशेष
तिवाड़ी	★	त्रिपाठी	अलमोड़ा		कुमावनती जाति
तेवाड़ी	★				
तैलंग	★				देवप्रयागी पण्डे
तड़याल ठाकुर	✿				तड़ी गांव में बसने से
तिरला बिष्ट	✿		चित्तौड़		
तुलसा रावत	✿				
तेज भंडारी	✿				
तोददा रावत	✿		कमायूं		
तमोटा	⌧				ठठेरे का काम करते हैं।
थपल्याल	★	आद्य गौड़	गौड़ देश	९८०	मूल पुरुष जयचन्द मयचन्द जयपाल
थपल्याल	✿				थापली गाँव में बसने से
देवराणी	★	भट	गुजरात	१५००	
द्राविड़	★				देवप्रयागी पण्डे
ढिकोला रावत	✿	मरहठा	महाराष्ट्र	४१५	ढिखोली गाँव में बसने से
दोरियाल	✿		द्वारहाट कमायूँ		
दर्जी	⌧				यह सिलाई का काम करते है

घम्वांण	★				
घयाणी	★				देवप्रयागी पण्डे
घस्माणा	★	गौड़	उज्जैन	१७२३	मूल पुरुष हरदेव, वीरदेव, माधोदास
घमादा	★				पुराने गढ़ाधीश की सन्तान
घम्मादा बिष्ट	✿	चह्वान	देहली		
नवनी	★	सत्ती	गुजरात	९८०	
नैथाणी	★	कान्यकुब्ज	कन्नौज	१२००	मूल पुरुष कर्णदेव इन्द्रपाल
नैन्याल	★				
नौटियाल	★	गौड़	धार (मालवा)	९४५	मूल पुरुष देवीदास नीलकंठ
नौड़ियाल	★	गौड़	भृगां भिरंगा	१६००	मूल पुरुष शशिधर
नकोटी	✿	नगरकोटी	नगरकोट कांगड़ा		नकोट गाँव में बसने से
नाई	✿				पहिले हजामत बनाते थे
नायक	✿				इनकी लड़कियाँ गायिका होती थीं
नीलकंठी नेगी	✿				
नेकी नेगी	✿				
धुनार	☒				झूला बांधते, नाव चलाते, मछली पकड़ते हैं।
धोणी	☒				नदियों की रेत से सोना निकालते हैं।
धोबी	☒				कपड़ा धोने का काम करते हैं।
नाई	☒				हजामत का काम करते हैं।

जाति का नाम		पूर्व जाति	कहाँ से आये	आने का सम्वत्	विशेष
नाथ	⌘				भीख माँगते और खेती करते हैं।
नाथ (गृहस्थी)	⌘				भैरव के उपासक कनफाड़ कृषक
पन्त	★		अलमोड़ा से		कुमायनी जाति
पस्याल	★	गौड़			देवप्रयागी पण्डे
पल्याल	★		धार मालवा	६४५	नौटियाल जाति की उपशाखा
पांडे	★		कुमाऊँ		कुमावनी जाति
पांथरी	★	सारस्वत	जालन्धर	१६००	मूल पुरुष अन्धू पन्थराम
पुज्यारी	★	भट	दक्षिण	१७२२	चन्द्रबदनी की पूजा करने से
पुरोहित	★	खजीरी	जम्मू	१८१३	पुरोहिताई करने से जातिसंज्ञा
पुरोहित	★				देवप्रयागी पण्डे
पुर्बिया	★	कान्यकुब्ज	कुमाऊं	१८००	
पैन्यूली	★	गौड़	दक्षिण	१२०७	मूल पुरुष ब्रह्मनाथ
पोखरियाल	★	विल्वल	विलहित	१६७८	मूल पुरुष गुरुसेन
पजाईं	✿	-	कुमाऊं		
पट्टूड़ा नेगी	✿				पट्टूड़ी गाँव में बसने से
पंडीर नेगी	✿	पंडीर —	सहारनपुर	१७२२	पृथ्वीराजरासोमें दिल्लीके समीप होने कहे जाते हैं

पटवाल गोसाईं	✿		प्रयाग	१२१२	पाटा गाँव में बसने से
पयाल ठाकुर	✿	कुरुवंशी	हस्तिनापुर		पयाल गाँव में बसने से
परमार (पवांर)	✿	परमार	धार गुजरात		यह गढ़वाल का १६४६ तक राजवंश रहा
परसारा रावत	✿	चौहान	ज्वालापुर	१५०२	परसारी गाँव में बसने से
पढियार नेगी	✿	परिहार	दिल्ली के समीप	१८६०	
पढियार बिष्ट	✿	परिहार	धार	१३००	परिहार का अपभ्रंश
पुंडीर भंडारी	✿	पंडीर	मायापुर	१७००	
पहरी	☒				गांवों में पासवानी का काम करते हैं
फरासी	★	द्राविड	दक्षिण	१७६१	
फसूंडा रावत	✿				
फरस्वाण रावत	✿		मथुरा के समीप	४३२	फरासू गाँव में बसने से
बंगवाल	★	गौड	मध्य देश	१७२५	
बड़थ्वाल	★	गौड़	गुजरात	१५००	मूल पुरुष सूर्यकमल, मुरारी
घड़ोनी	★	गौड़	बंगाल	१५००	
बडोला	★	गौड़	उज्जैन	१७६८	मूल पुरुष उज्जल
बदाणी	★	कान्यकुब्ज	कन्नौज	१७२२	
बलूणी	★	सारस्वत	जालन्धर	१७७६	मूल पुरुष जीवराम
बलोदी	★	द्राविड	दक्षिण	१४००	

जाति का नाम	पूर्व जाति	कहाँ से आये	आने का सम्वत्	विशेष
बावलिया ★				देव प्रयागी पण्डे
बिजल्वाण ★	गौड़			मूल पुरुष बिज्जू के नाम से जाति संज्ञा
बिनोला ★	द्राविड़			
बुघाणा (बहुगुना) ★	आद्य गौड़	गौड़ बंगाल	९८०	मूल पुरुष कृष्णानन्द अच्युतानन्द
बैरागी ★	गौड़			गृहस्थी बैरागी
बौखंडी ★	महाराष्ट्र	विलहित	१७००	यह अपने को मुकुन्द कवि की औलाद कहते हैं
बौराई ★	गौड़		१५००	
बौंसोली ★	गौड़	धार (मालवा)	९४५	नौटियाल जाति की उपशाखा
बगड्वाल बिष्ट ✿		सरमोर	१५१६	बगोडी गाँव में बसने से
बगलाणा नेगी ✿		बागल राज्य	१७०३	
बंगारी रावत ✿		बाँगर	१६६२	
बछवाण बिष्ट ✿				
बर्त्वाल ✿	पवाँर	उज्जैन	९४५	
बरवाणी रावत ✿	तोमर	मासीगढ़	१४७६	नैभंणा क्षत्री
बागड़ीनेगी या बागुड़ी ✿		मायापुर	१४१७	बागड़ प्रदेश से आने से
बुटोला रावत ✿	तोमर	दिल्ली	८००	बूटासिंह मूल पुरुष के नाम से
बुलसाड़ा नेगी ✿	कैत्यूरा	कुमाऊं		

बॅद्वाल विष्ट	✿				बैडोगी गाँव में बसने से
बैडोगा	✿				ये जाति प्रायः खेती करती हैं
बोहरा	✿				साइस का काम करते थे।
बखरिया	☒				नाचने गाने का काम करते हैं
बाही—बेडा	☒				
भट	★	भट	दक्षिण		
भट	★				देवप्रयागी पंडे
भट्ट	★				
भड्वाल	★				यह जाति पीछे मिलाई गई है।
भदोला	★	द्राविड़			
भल्डा	★				शिव के उपासक थे।
भाखा नेगी	✿		पटना		
भोटिया नेगी	✿	हूण राजपूत	हूणदेश (तिब्बत)		
भाट	☒				कवित्त गाकर भीख माँगते हैं
भंगी	☒				सफाई का काम करते हैं
मंजखोला	★	गौड	धार (मालवा)	६४५	नौटियाल जाति की उपशाखा सन् ७७७ ई०
मँडवाल	★	गौड़	द्वारहाट कुमाऊँ	१७००	मूल पुरुष राजदास
ममगाईं	★	गौड़	उज्जैन		मामा के गाँव में बसने से
मलासी	★	गौड़			

जाति का नाम	पूर्व जाति	कहाँ से आये	आने का सम्वत्	विशेष
बावलिय ★				देव प्रयागी

जाति का नाम	पूर्व जाति	कहाँ से आये	आने का सम्वत्	विशेष
मराड्ड़ी ★				यह जाति पीछे मिलाई गई है
महाराष्ट्र ★				देव प्रयागी पण्डे
मालकोटी ★	गौड़		१७००	मूल पुरुष बालकदास
मालगुड़ी ★				यह जाति पीछे मिलाई गई है
मालिया ★				देव प्रयागी पन्डे
मालीवाल ★				
मिस्सर ★	मिस्सर	कुमाऊँ		
मुन्ना घ्यूली ★				
मुसड़ा ★	गौड़	बंगाल		मूल पुरुष भागदेव
मैंठवाणी ★	आद्यगौड़	गौड़देश छः खात बंगाल	९७५	मूल पुरुष रूपचन्द त्रयम्बक
मैराव के जोशी ★	कान्यकुब्ज	कुमाऊँ	१८१२	पीछे मिलाए गये।
मैकोटी ★	कान्यकुब्ज	कन्नौज	१६२२	
मखलोगा ठाकुर ✿	पुंडीर	मायापुर	१४०३	मखलोगी में बसने से
मन्यारी रावत ✿				मन्यार पट्टी में बसने से
मन्द्रवाल-रजवार ✿		कुमायूँ	१७११	कुमाऊँ के कैंत्यूरा राजाओं की सन्ताप
मयाल ✿		कुमायूँ		

महरनेगी (महरा)	✿	गुर्जर राजपूत	लंढौरा		
मसोल्या रावत	✿	पंवार	धार		
मियाँ	✿		सुकेत व जम्मू		गढ़वाल में नातेदारी होने से आए
मुखयाल	✿				मुखवा या मुखेम गाँव में बसने से
मुलाणी बिष्ट	✿	कैंत्युरा	कुमायूँ	१४०३	मुलाणी गाँव में बसने से
मेहता	✿	जैनी	पानीपत	१५९०	यह वैश्य जाति है।
मौंडानेगी	✿		बागल		
मौंदारा रावत	✿	पवांर		१४०५	मौंदाड़ी गाँव में बसने से
मौराड़ा रावत	✿				
मोची-वाडी	⊠				जूता बनाने का काम करते हैं।
रतूड़ी	★	आद्य गौड़	गौड़ देश	९८०	मूल पुरुष सत्यानन्द राजवल
रुड़ोला	★	तैलंग	सिंध हैदराबाद		
रैवानी	★				देवप्रयागी पण्डे
रजवार-मंद्रवाल	✿				(देखिए मंद्रवाला रजवार)
रणौत	✿	रणावत	राजपूताना		शिशोदिया वंश की शाखा
रमोला	✿	चहान	मैनपुरी	२५४	पुराने ठाकुरी सरदारों की सन्तान
रांगड़	✿	रांगड़	सहारनपुर		
राणा (नागवंशी)	✿		हूणदेश		प्राचीन निवासियों में से
राणा (सूर्यवंशी)	✿		चित्तौड़	१४०५	

जाति का नाम	पूर्व जाति	कहाँ से आये	आने का सम्वत्	विशेष
बावलि[illegible] ★				

जाति का नाम	पूर्व जाति	कहाँ से आये	आने का सम्वत्	विशेष
रिखोला नेगी ✿				
रिंगवाड़ा रावत ✿	कैंत्यूरा	कुमायूँ	१४११	रिंगवाड़ी गांव में बसने से
रौंछेला ✿	तंवर	दिल्ली		
रौतेला ✿	परमार	धार गुजरात	९४५	यह पवांर वंश की उपशाखा है
रौथाण गोसाईं ✿		रथभौं (दिल्ली के समीप)		
रुडिया ⌘				
लखेड़ा ★	आद्यगौड़	वीरभूम	१११७	चटाइयां या टोकरियां बुनते हैं।
लोहवान नेगी ✿	चहान	दिल्ली	१०३५	मूल पुरुष नारद भानुवीर लोहबा पटी में बसने से
लोहार ⌘				लोहार का काम करते हैं
व्यासुड़ी ★	भट	दक्षिण	१६००	व्यास नामक मूल पुरुष के नाम से
वेदी खत्री ✿	खत्री	नेपाल	१७००	
श्रीगुरू ★				
सकल्याणी ★	कान्यकुब्ज	डौडिया खेड़ा अवध	१७००	मूल पुरुष वीरसेन भद्रासन
सती ★	सती	गुजरात		मूल पुरुष नागदेव
सिलोड़ा ★				

सिल्वाल	★	द्राविड़	बनारस		
सुन्दरियाल	★	कर्नाटक	दक्षिण	१७११	
सुन्याल	★				
सुयाल	★	गुजराती भट	गुजरात		मूल पुरुष दजल, वाजनारायण
सेमल्टी	★	आद्यगौड़	बीरभूम बंगाल	६६५	मूल पुरुष गणपति
सेम्वाल	★	आद्यगौड़	बीरभूम	६८०	मूल पुरुष प्रभाकर निरंजन
सैल्वाल	★				
संगेला बिष्ट	✿		गुजरात	१४००	
संगेला नेगी	✿	जाट राजपूत	सहारनपुर	१७६६	संगीन रखने.से
सजवाण ठाकुर	✿	मरहट्टा	महाराष्ट्र		प्राचीन ठाकुरी राजाओं की सन्तान
सरवाल नेगी	✿		पंजाब	१६००	
सिपाही नेगी	✿	मियां	नगरकोट कांगड़ा	१७४३	सिपाहियों में भर्ती होने से
सिंह नेगी	✿	बेदी	पंजाब	१७००	
सुनार	✿				
सोन भंडारी	✿				
सौत्याल नेगी	✿		डोटी नैपाल		सौंती गाँव में बसने से
सौंद नेगी	✿	राणा	कैलाखुरी		सौंदाडी गाँव में बसने से
सुनार	⊠				सोना चाँदी का काम करते हैं।
हटवाल	★	गौड़	बीरभूम	१०५६	मूल पुरुष सुदर्शन विश्वेश्वर

जाति का नाम	पूर्व जाति	कहां से आये	आने का सम्वत्	विशेष
होडरिया ★				देवप्रयागी पण्डे
हाथी नेगी ✿				
हलिया ⌘				हल जोतते व सेवा करते हैं।
हुड़क्या ⌘		कुमायूँ		नाचने गाने का काम करते हैं

संस्कृति और सभ्यता

गढ़वाल की सभ्यता और संस्कृति को मानवोचित जीवन की भूमिका कहा जा सकता है। आज की पाश्चात्य दृष्टि से भले ही उसमें रूढ़िवादिता या पिछड़ापन दिखाई देता हो किन्तु मनुष्य को बुरी भावनाओं से रोकने और उसे भांति भांति के सामाजिक तथा साँस्कृतिक नियमों से बांधकर सरल और प्राकृतिक जीवन बिताने के लिये इसमें पर्याप्त धरातल विद्यमान है। आज भी गढ़वाल का एकेक व्यक्ति चाहे, यह किसी भी विचार प्रणाली का हो, अपनी संस्कृति और सभ्यता की दीवालों से बाहर अपना पाँव नहीं रख सकता क्योंकि उसे भय होता है कि गढ़वाली जीवन में उसके बिना उसका काम न चल सकेगा।

गढ़वाल में बसन्त पंचमी को प्रत्येक गाँव के औजी हरिजन समस्त ग्रामीणों के घर जौ के पोधों की एक एक छोटी गड्डी डाल जाते हैं जिन्हें घर के समस्त प्रवेश द्वारों के सिरों पर दोनों ओर गोबर से चिपकाया जाता है। उस रोज गोबर की टोकरी लेकर कृषक अपने किसी निकटस्थ खेत में जाता और धूप दीप नैवेद्य से 'भूमिया' की पूजा करके नये वर्ष की खेती का शुभआरम्भ मान लेता है। नये सम्वत् के स्वागत में उसी रात्री से 'थड्या गीत' का मंगल गान आरम्भ होकर रात को दो तीन घंटे प्रतिदिन विपुवत संक्रांति तक होता रहता है और उस दिन भेलियों की बलि के द्वारा सम्पन्न किया जाता है। इसी प्रकार चैत्रमास में आरम्भ से विपुवत संक्रांति तक सबके दरवाजों पर छोटी २ कन्याओं के द्वारा फ्यूंली के बसन्ती फूल डाले जाते हैं और ताक में रखे हुए घोगा देवतों (चकमक पत्थर के पाँच छोटे छोटे टुकड़ों) की भी फूलों के द्वारा रोजाना पूजा की जाती है। विपुवत संक्रांति को यह पूजा सम्पन्न होती और फूलों की लम्बी २ टहनियां मकान की छतों पर खड़ी की जाती हैं। यह चैत्रमास गढवाल के औजियों का महीना भी माना जाता है। इस महीने में औजी लोग भी अपने गांवों में तथा अन्यत्र नाचते गाते हैं और उच्चवर्णों द्वारा अन्न, वस्त्राभूषण अथवा बर्तन आदि देकर सम्मानित किये जाते हैं।

फागुन की खेती का आरम्भ होने से पूर्व एक बार भूमिया की पुनः पूजा

होती है जिसमें ब्राह्मण को बुलाकर कृषिकर्म के समस्त औजार भी पूजे जाते हैं और समस्त गांव के लोग एक साथ बैठकर भोजन करते हैं। कहीं कहीं 'अयांर पूजा' भी होती है जिसे केवल ग्वालबाल ही करते हैं। इसका अर्थ जंगलों की विषैली वनस्पति की पूजा है कि उसे खाकर गोधन को कष्ट न हो। इसी प्रकार अनावृष्टि से तंग आकर एक लम्बी रस्सी के ऊपर काठ का बाद्दी बनाकर ऊपर से छोड़ते, अथवा पाषाणों की पूजा, यज्ञ, होम आदि करते और भगवान इन्द्र से वर्षा की प्रार्थना करते हैं।

ओले आदि पड़ने पर गढ़वाल के डाल्या*का कर्तव्य हो जाता है कि वह तंत्र मंत्र से उसे बन्द करदे। ऐसी स्थिति में वे लोग अपने मकानों की छतों पर जाकर जोर जोर से मंत्र पढ़ते हैं और इस प्रकार ओले बन्द हो जाते हैं। बहुवृष्टि की स्थिति में तवे या मेंढक को भूमि में गाढ़कर वर्षा बन्द की जाती है।

कृषिकर्म की व्यवस्था में गढ़वाल को प्रायः कड़े नियमों की आवश्यकता भी हुई है। हल चलाते हुए भूमि की खुदाई में सर्प का दिखाई देना या हल के लोहे से उसका कट जाना अत्यन्त अशुभ माना जाता है। ऐसा होने पर कृषक को अपने कपड़े तथा हल-बैल त्याग कर सोने-चांदी का एक नाग देवता बनवाकर सेम (यमनोत्री के निकट) की यात्रा करके अनिवार्यतः उसे वहाँ मन्दिर में चढ़ाना होता है। गेहूं की बाली के निकट उसी डंठल पर दूसरी बाली उत्पन्न होना भी अशुभ माना जाता है जिसके प्रायश्चित के लिए एक बकरे की बलि देनी पड़ती है। धान के ढेर में 'सौ' (चकमक पत्थर का घास में लपेटा हुआ एक छोटा टुकड़ा) रखने का भी गढ़वाल में नियम है। यह 'सौ' धानों के कोठार में उनकी समाप्ति तक पड़ी रखी जाती है।

तुलसी के पौधे तथा बड़ और पीपल के पेड़ पूजनीय माने जाते हैं और तुलसी को एक गमले पर जमा कर गढ़वाल में मकानों के पास रखने की परिपाटी है। बड़ और पीपल बहुधा पानी के निकट या गांव के मध्य या आस पास जमाए जाते हैं। आम पैंय्यां और केला शुभ कार्यों में उपयोग होने वाले पेड़ माने जाते हैं और श्रावण मास पर्यन्त बिल्वपत्र (बेल की पत्तियां) को शिवजी की भेंट करने का महात्म्य माना जाता है। मालू (एक जंगली बेल) के दोहरे पत्तों की गढ़वाल में पत्तलें बनती हैं और इसकी उपयोगिता भी मानी जाती है।

स्त्रियों का पहिला प्रसव कार्तिक में होना अशुभ माना जाता है और इसी प्रकार माघ के पुण्य मास में स्त्रियों से सहवास करना भी निषिद्ध है;

* ओले बन्द करने के मन्त्र जानने वाला

क्योंकि इन दोनों ही बातों का पारस्परिक सम्बन्ध है। कार्तिक के प्रसव वाली स्त्री बड़े दान-धर्म के पश्चात् ग्राह्य होती है। इसी प्रकार भाद्रपद मास की ब्याई हुई गाय और माघ की ब्याई हुई भैंस त्याज्य मानी जाती है। यदि किसी गाय या भैंस के दो बच्चे हो जाएं अथवा उसके थन से एक बूंद भी रक्त निकल आए तो वह तुरन्त छोड़ देनी पड़ती है। पशुओं के लिए गढ़वाल में एक विशेष देवता होता है जिसे 'बालण देवता' कहते हैं। गऊ के ग्यारवें दिन तक उसका दूध-घी सब के उपयोग में नहीं आ सकता और इसलिए 'बालण की पूजा की जाती है और तत्पश्चात उसे शुद्ध मान लिया जाता है। भैंस को शायद १५ या २० दिन में पवित्र बनाया जाता है। गाय का बछड़ा तथा भैंस का झोटा धार्मिक उपयोगिता वाले जानवर हैं। बछड़े को महादेव जी के मन्दिर पर श्रावण मास के बिल्वपत्र के साथ चढ़ा दिया जाता हैं और उसके पश्चात् उससे हल चलाने का काम न लिया जाकर गोवंश की वृद्धि के लिये ब्रीडिंग का ही काम लिया जाता है। इसी प्रकार देवो के मन्दिरों पर झोटे की बलि दी जाती है। बन्दर व सर्प को मारना पाप माना जाता है और पितृ कार्य में कौवे को पूड़ी (पत्ते पर रखे चावल) खिलाने का महात्म्य है।

गढ़वाल में पारस्परिक अभिवादन भी भिन्न प्रकार के होते हैं। राजपूत लोग ब्राह्मण के अभिवादन में 'पायलागन' कहते हैं, और ब्राह्मण उसके उत्तर में 'आशीर्वाद' या 'जैदेवा' कहता है। हरिजन की ओर से ब्राह्मण-राजपूतों का अभिवादन 'सेमान्यां ठाकुरो' कहकर किया जाता है और इसका प्रत्युतर उनकी ओर से 'राजी रहो' या 'चिरंजीव रहो' कह कर दिया जाता है। सभी जाति के लोग अपनी ही जाति के अन्तर्गत 'समनन' कहकर अभिवादन करते हैं किन्तु अब धीरे २ यह प्रथाएं बदलती जा रही हैं। आर्यसमाज के प्रभाव से प्रत्येक जाति के लोगों में अकेले 'नमस्ते' शब्द से सभी जगह काम चलाने का रिवाज चल पड़ा है और हरिजनों के 'सेमान्या ठाकुरो' के स्थान पर तो इस शब्द को रखना युक्ति संगत ही हो सकता है क्योंकि हरिजनों का स्तर ऊपर उठाने के लिए अब डोम, डोमाणा, या सेमान्या ठाकुरो के शब्दों का निमूंल किया जाना आवश्यक है। ब्राह्मणों में परस्पर 'नमस्कार' के शब्द द्वारा भी अभिवादन होता है।

साले की स्त्री से गढ़वाल में बहिन का नाता होता है और इसी प्रकार फूफा को मामा कहने का रिवाज है। अनुज-बधू तथा भानजे की स्त्री से छूना पाप माना जाता है और हरिजनों से भी चाचा ताऊ मामा के रिश्ते होते हैं। कोई स्त्री अपने पति व सास ससुर का नाम अपने मुंह से उच्चारण

नहीं कर सकती और इसी प्रकार पति के जीवन काल तक नथ या लौंग का एक पल के लिए भी नाक से उतारना निषिद्ध होता है।

गाय, ब्राह्मण और बहिन की गढ़वाल में धार्मिक मान्यता है और एतदर्थ जीवन की विभिन्न घटनाओं पर इनके पूजने का विधान है। शादी-विवाह या जीवन मरण के धार्मिक कृत्यों में गाय की पूजा होती है और गोदान भी किये जाते हैं बल्कि जीव को गरुड़ पुराण की काल्पनिक वैतरणी नदी के पार कराने वाली अकेली गौमाता ही मानी जाती है। ब्राह्मण को धर्म की प्रतिमूर्ति माना जाता है और ब्राह्मणोपयोगी शिक्षा, आचार विचार और तपश्चर्या के पर्याप्त अभाव में भी दूसरे वर्णों के लोग उन्हें गुरु ही मानते हैं। अन्य स्थानों की तुलना में गढ़वाल में अब तक भी पाण्डित्य काफी है और इसलिए ब्राह्मणसमाज की धार्मिक मान्यता यथापूर्व चली आती है। इसी प्रकार बहिन को (चाहे वह किसी भी जाति की हो) समय समय पर अपने भाइयो के द्वारा पूजा जाता है। कन्याओं को भोजन कराना और दक्षिणा देना पुण्य माना जाता है किन्तु गढ़वाल में पितृगृह पर कन्या को सदा ही ब्राह्मण की तरह पूजा जाता है और उसे दक्षिणा भी दी जाती है।

पर्दे का गढ़वाल में विशेष चलन नहीं है क्योंकि वहां की जीवन अवस्थाओं से पर्दे का मेल नहीं है। शहरों के लोग, जहाँ स्त्रियों को खेत पर या घास लकड़ी के लिए बाहर नहीं जाना पड़ता, परदा करते है। तात्पर्य यह है कि यहाँ पर्दे की ग्रामीण प्रथा सर्वथा भिन्न है और पतले कपड़े को आँखों के ऊपर डालकर और अन्दर से टकटकी लगाकर देखने के बदले यहाँ केवल आँख का ही पर्दा होता है। स्त्रियाँ अपने पतिगृह में अपने सभी बड़ों (पुरुषों) के समक्ष ज़ोर से बोलने, हँसने, दौड़ने के लिए स्वतंत्र नहीं होती और उनके समक्ष कुछ भी बोलते हुए उनकी दृष्टि सदैव भूमि की ओर नीचे होतीं है अपने पति के ही समक्ष महीनों व वर्षों के पश्चात् वे खुलकर बोल सकती हैं। ससुराल गये पति को अपनी स्त्री के दर्शन होना प्रायः दुर्लभ हुआ करता है।

गढ़वाल के रीत रवाज़ मनुष्य जीवन के कोने-कोने तक व्याप्त होते हैं और सोने, उठने, चलने, बोलने, खाने, पहिनने में भी उनका कट्टर नियंत्रण होता है। किसी शुभ कार्य में प्रस्थान करते हुए क्या देखना शुभ होता है और क्या अशुभ, स्वप्न की किसी अशुभ सूचना को गाय के कान पर कहने से उसका दुष्प्रभाव नष्ट हो जाता है अथवा दो सर्पों की लड़ाई देखकर किसी को क्या करने की आवश्यकता होती है यह सब हमारी इस सांस्कृतिक दुनिया में अभिव्यक्त है।

मनुष्य के जन्म, विवाह, मृत्यु और खान-पान आदि के अवसर गढ़वाली साधारण लोगों में किस प्रकार आते और मनाए जाते हैं इसका संक्षेप में वर्णन कर गढ़वाली संस्कृति का मूल हमारी दृष्टि के समक्ष आजायगा।

जन्म—गढ़वाल में प्रत्येक व्यक्ति के सन्तान (लड़का) होना आवश्यक माना जाता है और सन्तान प्राप्ति के लिए लोग बहुधा दो-तीन बल्कि इससे भी अधिक शादियां करते देखे गये हैं। बीस-बाईस वर्ष की आयु तक किसी स्त्री के गर्भ धारण न होने पर उसे किसी देवी-देवता या भूत-प्रेत का दोष मानकर अनेक प्रकार के पूजन आरम्भ हो जाते हैं। श्रीनगर में बैकुण्ठ चतुर्दशी को भगवान कमलेश्वर के मंदिर में पुत्र प्राप्ति की कामना वाले स्त्री पुरुष, घी के दीये हाथों पर लेकर, रात्री पर्यन्त खड़े रहते हैं। कई लोग इसके लिए पूर्णिमा या इतवार के व्रत भी करते हैं।

पुत्र प्राप्ति पर गढ़वाली परिवार खुशियां मनाता है और कन्या उत्पन्न होने पर प्राय: क्लेश का अनुभव करता है। केवल पहले पहल या कई पुत्रों के पश्चात् होने वाली कन्या को सामान्यतः शुभ माना जाता है। बच्चे की उत्पत्ति पर जच्चाओं के लिए प्राय: अंधेरे घर की ढूंढ की जाती है बल्कि बहुधा गोबर से भरी गौशालाओं के एक कोने पर या अंधेरी कोठरी में गढ़वाली बच्चे पैदा होते हैं और जच्चा-घर को और भी अंधेरा रखने के लिए कुछ दिन तक लगातार उसमें धुँवा लगा रखने का, इस पर्वतीय प्रदेश में, प्राचीन दस्तूर चला आता है जिसके लिए कुछ समय पूर्व से पेड़ों की जड़ों के टुकड़े सुखाकर संग्रहीत रखे जाते हैं। जच्चा को घास के मोटे बिछौने पर साधारण से कपड़ों में लिटाया जाता है और उसके सिरहाने के नीचे लोहे की एक दरांती के साथ बिच्छू घास की एक टहनी को भी अनिवार्यत: रखने का चलन है। यह शायद इसलिए किया जाता है कि जच्चा और बच्चा को भूत-प्रेत के भय से सर्वथा सुरक्षित रखा जाय क्योंकि पांच चार रोज तक कतई बाहर न निकलने के आदेश पर भी यदि कारणवशात जच्चा को कोठरी से दस कदम भी बाहर निकलना पड़ा तो दरांती और बिच्छू घास उसके साथ ही रहते हैं। पांचवें दिन सुबह की धूप पर बच्चा और जच्चा को थोड़ी देर के लिए निकाला जाता है और लड़का होने की स्थिति में पांचवे दिन की खुशी में उस रोज़ गुड़ की भेलियाँ, पकौड़े तथा चावल और तिल मिला कर बांटे जाते हैं। इन सब वस्तुओं को अब धीरे-धीरे लड्डुओं में परिवर्तित किया जा रहा है।

बच्चे की आयु का छठा दिन भी प्रायः खुशियां मनाने का दिन होता है। उस दिन रात्रिपर्यन्त जागरण होता और पांडव नाच के साथ-साथ बट

संस्कार भी किया जाता है। जच्चा और बच्चा तब तक अछूत रहते हैं और उन्हें छूने वाले पुरुष अथवा स्त्री को स्नान करके कपड़े आदि बदलने पड़ते हैं। दसवें दिन नाम-करण के दिन सामान्यत: छूत छात का प्रतिबंध हटा लिया जाता है किंतु फिर भी उन्हें पानी नहीं छूने दिया जाता और जच्चा को रसोई घर या पानी के बर्तनों को नहीं छूने दिया जाता। नामकरण के दिन ब्राह्मणों तथा बंधु बांधवों को भोजन आदि कराया जाता है।

जच्चा को आरम्भ से ही प्राय: हलका भोजन (चावल) दिया जाता है और कई दिन तक चावलों के साथ दिये जाने वाले साग (जो कि प्राय: चावलों के ही पानी का बनता है) में नमक भी नहीं डाला जाता। बल्कि जच्चा की शारीरिक तथा आत्मिक शुद्धि के लिए निर्धारित पञ्चगव्य (दूध, दही, घी, गंगाजल आदि के साथ गोमूत्र) को बच्चे के नामकरण संस्कार तक हर तीसरे दिन, दो तीन घूँट पीने से उसके मुँह का जायका प्राय: समाप्त ही हो जाता है। बच्चे के स्वास्थ्य का ध्यान रखते हुए भी कई महीनों और वर्षों तक उसे कई भोज्य पदार्थों को न खाने का आदेश भी होता है क्योंकि पांच वर्ष की आयु तक गढ़वाल में बच्चों को जूंके का रोग लगने का डर रहता है जिससे गढ़वाल के गर्म स्थानों में बच्चों की अधिकांश क्षति होती है।

गढ़वाल में बच्चों या किसी भी आयु के लिए उदर रोगों के उपचार की परम्परागत परिपाटि भी भयंकर होती हुई हास्यास्पद भी होती है। रोगी के पेट, गले बल्कि कान और आँख के बीच की जगह पर जलते हुए सोने के निशान लगाए जाते हैं जो कि काफी लम्बे समय तक पकते और दुखते रहकर बड़े कष्टप्रद होते हैं किंतु इससे आराम भी मिलता है।

गढ़वाली बच्चों की आकस्मिक बीमारियों को प्राय: भूत-प्रेत के छल का कारण ही माना जाता है जिसके लिए वैद्य के बदले तंत्र-मंत्र करने वाले झाड़खंडी, तनिक राख की टिक्की उस रोगी बच्चे के माथे पर लगा कर बीमारी को दूर कर देते हैं। दो-तीन वर्ष बल्कि पांच वर्ष की आयु तक बच्चे को घर से दूर नहीं ले जाया जाता और अनिवार्य आवश्यकता आने पर उसके साथ लोहे का कोई अस्त्र, भूत-प्रेत से उसकी रक्षा करने के लिए, साथ रखा जाता है। गांवों में अधिकांशत: बच्चों के गलों में जंगली जानवरों के नाखून, जंत्र की छोटी डिबिया हिंगलास के दानों की माला और हाथ पावों पर लोहे के पतले तार के कड़े भूत प्रेत का डर भगाने के लिए लगे होते हैं।

मां का दूध पर्याप्त न होने पर बच्चे को शीघ्र ही गाय का दूध अथवा अन्न देना भी आरम्भ कर दिया जाता है किन्तु इस प्रकार बच्चे प्राय: रुग्ण

और निर्बल हो जाते हैं। पर्याप्त स्तनपान मिलने पर बच्चे का छः माह या नौ माह के पश्चात् अन्न प्राशन संस्कार भी कराया जाता है।

बच्चे को पहिनाए जाने वाले कपड़े प्रायः मां-बाप व भाई बहिनों के पुराने कपड़ों को फाड़ कर बनाए जाते हैं क्योंकि अन्यथा नए कपड़े से शिशु की मुलायम चमड़ी के छिलने का डर रहता है इसलिए एक वर्ष या इसके भी कुछ समय पश्चात् परिधान संस्कार किया जाता और उस दिन से बच्चे को नया वस्त्र धारण कराया जाता है। पांच वर्ष की आयु या इससे कुछ पूर्व मुण्डन (चुडाकर्म) संस्कार होता है जिसमें बच्चे के सिर के बाल काटे जाते हैं और पांच ही वर्ष की आयु में अथवा साधनों की अनुपस्थिति में इसके कुछ समय पश्चात् विद्यारम्भ कराया जाता है। यह संस्कार अधिकांशतः वसन्त पञ्चमी को हुआ करता है।

गढ़वाल की सवर्णीय छूत-छात में यज्ञोपवीत का प्रश्न अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यज्ञोपवीत धारण करने से पूर्व किसी व्यक्ति के द्वारा बनाया गया कच्चा भोजन उसके परिवारी भी नहीं खा सकते और गढ़वाली परिस्थितियों में प्रत्येक व्यक्ति के इस अधिकार को शीघ्र प्राप्त करने की आवश्यकता होती है। इसलिए द्विजों को प्रायः ११ वर्ष की आयु से १२ वर्ष या इससे कुछ ही अधिक आयु तक यज्ञोपवीत धारण कराया जाता है। कई लोग विवाह के साथ ही यज्ञोपवीत संस्कार भी कराते हैं।

गढ़वाली कन्याओं के लिए पाँचवे दिन के साधारण से संस्कार के अतिरिक्त न 'छटी' का ही संस्कार किया जाता है और न नामकरण का ही। परिस्थितियों की अनुकूलता में लड़कों की ही तरह वह भी कराया जाता है और इसी प्रकार बिना ही संस्कार के कपडे इत्यादि भी पहिनाए जाते हैं। आरम्भ से ही माता-पिता के द्वारा इन्हें घरू काम धन्धे सिखाए जाते हैं और पुरुषों की अपेक्षा अपने को छोटा समझने की प्रवृति भी इनमें उत्पन्न की जाती है।

लड़कों के विद्यारम्भ की ही तरह लड़कियों को भी लगभग पांच वर्ष की आयु में समाज की एक अनिवार्य आवश्यकता के सामने आना पड़ता है जिसे 'कर्णवेद' याने कान छिदाई कहा जाता है। लड़की के माता-पिता किसी शुभ दिन पर (प्रायः वसन्त पंचमी के दिन) लड़की के कान और नाक को चांदी के एक तार से छिदवाते हैं। कान के ऊपरी भाग को चार पांच जगह पर और निचले भाग को एक जगह पर छिदवाया जाता है जिससे वह अपने यौवन काल में आभूषण पहन सके। किन्तु कान के ऊपरी भाग की छिदाई क्रमशः आधुनिक फैशन के कारण, लोप होती जा रही है। नाक भी

दो स्थानों पर छेदा जाता है एक बायें नथने के बाहर से और दूसरा दोनों नथनों के बीच की कोमल हड्डी पर, क्रमश: नथ और बुलाक पहिनने के लिए छेदा जाता है। लड़कियों के लिए यह भी एक भयंकर परीक्षा होती है किन्तु गहनों के कारण उत्पन्न होने वाले सौंदर्य के साथ अपने यौवन-काल की कल्पना कर, खुशी-खुशी वह उसका कष्ट सहन कर जाती हैं। उन्हें उस समय मिठाई और पकौड़े मिलने का भी लोभ होता है। यह संस्कार प्राय: लड़कों की कान बिंदाई के लिए भी हुआ करता है।

शहरू लड़कियों को भी लड़कों की ही तरह विद्यारम्भ कराया जाता है क्योंकि एक तो वहाँ प्राय: कन्या पाठशालाएं होती हैं और दूसरे यह कि शहरू माताओं को घरू काम-काज में उनकी सहायता की आवश्यकता नहीं होती। ग्रामीण-जीवन में प्रत्येक काम का उत्तरदायित्व स्त्रियों पर होने के कारण लड़कियों की शिक्षा का प्रश्न ही नहीं उठ पाता बल्कि लड़के भी अनपढ़ रह जाते हैं।

विवाह—गढ़वाल के ग्रामीण-विवाह अधिकांशत: खेती-बाड़ी के काम का भार उठाने के लिए होते हैं क्योंकि लड़के की मां तब तक अधिक आयु होने और बच्चे बच्चियों की घमासान हो जाने से घर के समस्त कामों को स्वयं करने के योग्य नहीं रहती। लड़के की आयु १२-१४ वर्ष होते ही मातायें बहुधा उनके विवाह की योजनाएं बनाने लगती हैं और इसलिए बाल-विवाह की त्याज्य प्रथा का गढ़वाल में पृष्टपोषण होता है। इसी प्रकार औलाद की अनिवार्यता का प्रश्न गढ़वाल के शुल्क विवाहों तथा अनमेल विवाहों की भूमिका का निर्माण करता है और गढ़वाल के महिला जीवन को अत्यन्त दुष्कर और करुणाजनक बना डालता है। केवल शीक्षित और समृद्ध परिवारों के विवाह, विवाह की यथार्थ आवश्यकता के लिए होते हैं।

गढ़वाल के सामाजिक इतिहास में वहां का विवाह परिच्छेद कतिपय कारणों से एक महत्वपूर्ण अध्याय है। इसका पहिला कारण यह है कि इससे सामाजिक अनुशासन का कठोर परीक्षण होता है। बाह्य संसार गढ़वाल के कुछेक शुल्क विवाहों से हमारे नैतिक मान का अन्दाज लगाकर कदाचित यह अनुभव करती है कि धनहीन गढ़वालियों को अधिक धन देकर किसी भी जाति के लोगों द्वारा उनकी कन्याओं को खरीदा जा सकता है। इसी आधार पर अनेक भद्दी कहानियाँ पर्वतीय स्त्रियों का प्रश्न लेकर आये-दिन मैदानी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं। बल्कि कुछेक उच्छृंखल पत्रकारों व कहानी लेखकों के द्वारा मैदानी लोगों में ऐसी धारणा बना दी गई है जिससे वे मान लेते हैं कि विवाह के किसी भी इच्छुक व्यक्ति को पहाड़ों में

जाकर स्त्रियाँ प्राप्त हो सकती हैं। किन्तु उनके इस कथन का हमारे समाज की वास्तविकता के समक्ष कितना वजन है, यह हमें स्पष्ट हो जाता है। हम देखते हैं कि आज के कठिन और परिवर्तित समय में भी ऐसी कोई घटना हमें नहीं मिलती जिसमें बाहर तो क्या गढ़वाल के अन्दर ही कोई अन्तरजातीय विवाह हुआ हो। किसी जाति विशेष, (जैसे कुछ समय पूर्व की नायक जाति) जिसे मैदानों में ही आकर स्वच्छन्द विचरण करने की सामाजिक छूट प्राप्त हो, तथा जो बाहर आकर अपने को उच्च जातियों का प्रकट करती हों, का प्रश्न शेष गढ़वाल की सामाजिक सीमा के अन्तर्गत नहीं आ सकता।

आज हिन्दू जनता के व्यवस्थापन के लिए वर्तमान समाज अन्तरजातीय विवाह तथा जाति-पांति के प्रश्न का लोप करने जा रहा है और हो सकता है कि इस प्रकार हिन्दू जाति का उद्धार हो हो किन्तु गढ़वाल में ऐसी किसी परिपाटी का तुरन्त आरम्भ किया जा सकना नितान्त कठिन है और वहाँ के हरिजन तक पहले-पहल उच्च जातियों को अपनी लड़कियाँ देने और इस प्रकार पारस्परिक विवाह सम्बन्ध स्थापित करने के लिए शायद ही प्रस्तुत हो सकें। तात्पर्य यह है कि कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी हम लोग वैवाहिक अनुशासन से नहीं डिगते।

विवाह परिच्छेद की महत्ता का दूसरा कारण यह है कि वह गढ़वाल के प्रत्येक स्त्री-पुरुष के जीवन की एक आवश्यक घटना है। मैदानों तथा बाह्य देशों में बड़े-बड़े समृद्ध अथवा शिक्षित लोग भी विवाह को जीवन की अनिवार्य आवश्यकता नहीं मानते और इसलिए कई धनिकों तथा अंग्रेज अधिकारियों तक को इस दिशा में विरक्त और उदासीन पाया जाता है। किन्तु गढ़वाल में अन्धे, लूले व गूंगे भी विवाह करते हैं और विवाह के इस अनिवार्य नियम पर जन-स्वीकृति की छाप लगाने के लिए वहाँ के समाज वेत्ताओं ने 'नौनां बच्याँ रला त गोरु चराला' जैसी लोकोक्तियों के द्वारा प्रत्येक घर में सन्तति होना अत्यावश्यक माना है। हो सकता है कि वर्तमान पाश्चात्य सभ्यता या हमारी साधन हीनता में ऐसी विचार धारा का मूल्यांकन न हो तथापि यह निर्विवाद सिद्ध है कि समाज को व्यभिचार और गन्दगी से दूर रखने के लिए प्रत्येक युवा पुरुष या स्त्री को विवाहित होना आवश्यक है बल्कि वह भी समय के अनुकूल ही। युवावस्था वाले पुरुष या स्त्रीयों की शीघ्रगामी मनोभावनाओं और प्रवृत्तियों के केन्द्रीकरण का भी गढ़वाली दार्शनिकों की दृष्टि में यह सर्वोत्तम उपाय था और इसी कारण लगातार अब तक भी दूसरे लोगों की तुलना में हम अपने गढ़वाल समाज को काफी ऊपर पाते हैं।

गढ़वाल में लगातार अब तक माता-पिता की पसन्द पर ही प्राय: लड़के लड़कियों के विवाह होते हैं और विवाह से पूर्व चार आंखें करने का उन्हें मौका नहीं मिलता। विवाह के इस प्राथमिक किन्तु कठोर नियम के कारण यहां ऐसी घटनाएं भी प्राय: 'नां' के बराबर ही होती हैं जिनमें विवाहोपरान्त वर-वधू में केवल इसलिए विवाद उत्पन्न हुआ हो कि वे एक दूसरे को पसंद नहीं करते। कुछेक बड़े और नवीन सभ्यता वाले घरों में अलबत्ता लड़के-लड़की को विवाह से पूर्व परस्पर दिखाने की प्रथा चल पड़ी है किन्तु साधारण जन-समाज अभी तक इससे सर्वथा अछूता है।

गढ़वाली समाज प्राचीन काल से ही विवाह को उसके वास्तविक अर्थों में मानता है और अनमेल परिस्थितियों में भी उसका आवश्यक ध्यान रखता है। वर-वधू को आयुपर्यन्त एक दूसरे के साथ रह कर ही जीवन के अनेक चढ़ाव-उतार तय करने होते हैं इसका वैज्ञानिक हल गढ़वाल परिवार की दृष्टि में यह है कि उनके पारस्परिक सम्बन्धों की आधार शिला मन की अस्थिर तरंगों पर न रखकर समाज और संस्कृति के एक विशाल और शक्ति-पूर्ण धरातल पर रखी जाय। माता पिता की पसन्द पर विवाह की वैधानिक स्वीकृति की छाप लगाने के लिए गढ़वाल में जन्मपत्री जुड़ाने का प्रमुख और अकाट्य चलन है जिसके बाद प्राय: यह मान लिया जाता है कि वर और वधु के मनोविज्ञान में साम्य है और वे जीवन पर्यन्त एक दूसरे को अपना मान कर चल सकेंगे। जन्म पत्री के विश्वास से भटका हुआ समाज आए दिन इस दिशा में ऐसे-ऐसे नये और उच्छृंखल नियमों का आविष्कार करता आ रहा है जिनसे विवाह के धार्मिक व सामाजिक महत्व का वज़न क्रमश: घटता जा रहा है और इस प्रकार समाज का विकास तो क्या विनाश ही हो सकता है।

गढ़वाल में 'दान का विवाह' उत्तम विवाह माना जाता है जिसमें विवाह की शास्त्रीय विधि द्वारा कन्या का दान किया जाता है और इसके द्वारा कन्या के मातृ-पिता अपने को परिस्कृत मानते हैं। ऐसे विवाह में कन्या के परिवार की ओर से प्रयत्न होता है कि दहेज के रूप में कन्या को कुछ न कुछ अवश्य दिया जाय। बल्कि कुछ समय से ऐसे विवाहों के लिए वर पक्ष अधिक से अधिक प्राप्ति की खींचातान भी करने लगे हैं। ऐसे विवाह ही अब गढ़वाल में अधिकाँशत: होते हैं।

दान के विवाह में बाजे के साथ पालकी घोड़ों की सवारियों पर, वर को कन्या के घर ले जाया जाता है। साथ में चलने वाले लोग अच्छे अच्छे वस्त्र आदि पहिन कर ठाट-बाट के साथ बरात में जाते हैं और कभी-कभी उनके

साथ गाने-बजाने वाली नर्तकियाँ भी जाती हैं। उस गाँव के निकट गोधूली के पश्चात् पहुंच कर वहाँ के लोग भी गाजे बाजे के साथ उनकी अगवानी के लिए आते और कन्या-पक्ष का ब्राह्मण एक छोटी-सी कन्या के सिर पर 'दोगद' का पानी आगत मेहमानों के ऊपर छिड़कता है। यहीं पर कन्या का पिता या बड़ा भाई, जिसके हाथों कन्या दान होने वाला हो, पालकी को अपने कन्धे पर उठा कर एक दो कदम चलता है। उसके पश्चात् एक ओर आतिशबाजी का कार्य आरम्भ होता है और दूसरी ओर बरातियों का चाय, पान तथा पिठाईं (सब के माथे पर रोरी का तिलक व अक्षत आदि) लगती है तथा पिचकारियों से पीले रंग के छींटे भी डाले जाते हैं। पिठाईं के साथ साथ प्रत्येक बराती को एक एक नकद रुपया भी दिया जाता है। यह समय साधारण से नाच गायन का भी होता है अतः नर्तकी की अनुपस्थिति में बैठक में रखे हुए हारमोनियम या ग्रामोफोन को भी चालू कर दिया जाता है उस समय एक विशेष बात यह भी होती है कि बरातियों को मंगल गान के साथ कुछ मधुर गालियों से भी सम्मानित किया जाता है और तब भोजन भी आरम्भ हो जाता है।

गढवाली विवाहों में कुछ समय पूर्व बकरे मारने की भी परम्परा थी किंतु दान के विवाह में इसका आधिक्य नहीं था। अब कुछ वर्षों से यह परम्परा समाप्त हो गई है इसलिए विवाहों में हलुवा-पूरियाँ मिठाइयां, तथा भाजियाँ इत्यादि ही बनती हैं।

बर-बधू के विवाह के लिए एक विशेष समय निश्चित होता है और इसी प्रकार उसके लिए स्थान भी विशेष प्रकार से बनाया जाता है। कन्या के पिता के घर के सामने १५-२० वर्ग फीट की एक चौकोर बेदी, जो शायद डेढ फीट ऊंची भी होती है, पत्थर व मिट्टी से बनाई जाती है। बेदी के चारों कोनों पर केले के पेड़ व चीड़ की टहनियां काट कर खड़े किए जाते हैं और इसी प्रकार विभिन्न दिशाओं पर मिट्टी के दिये भी जलते रहते हैं। बेदी के ऊपर एक चंदोया लगा होता है। कर्मकाण्ड की रीति के अनुसार पूजा व दान का भी छोटा-छोटा सब सामान एकत्रित रहता है।

यदि विवाह का मुहूर्त रात का ही हो तो भोजन के तुरन्त बाद ही कन्या पक्ष से गाजे-बाजे वर के स्थान पर (जो कि प्रायः कन्या के घर को छोड़कर किसी दूसरे ही घर में होता है) आकर उसे विवाह के स्थान पर ले जाते और उसका पूजन होकर दोनों को एक साथ वेदी पर बिठा दिया जाता है। विवाह की विधि के अनुसार वर-वधू को सात बार बेदी के चारों ओर फिराया जाता है और उस सारे ही समय, वर के अंगरखे को वधू की चादर

के किनारे से एक पीले कपड़े से जुड़ा दिया होता है। विवाह के सम्पन्न होने पर कपड़े बर्तन तथा गाय आदि भी कन्या के साथ ही दान में दिये जाते हैं।

दूसरे दिन पुनः बरातियों को चावल-दाल, घी और कभी-कभी बकरा आदि देकर अपना भोजन स्वयं पकाने के लिए कहा जाता है जिसे फड़ कहते हैं। गांव में थोड़ी दूर बाहर पानी के निकट जाकर समस्त बरातियों के लिए भोजन बनता है और फिर खा-पीकर वे वापसी के लिए तैयार हो जाते हैं।

वधू को भी डोली पर बिठाकर ले जाया जाता है और कन्या पक्ष से सामान, डोली आदि लेजाने तथा गाजे बाजों वाले व्यक्तियों के अतिरिक्त एक ब्राह्मण को भी दही का एक छोटा सा पात्र लेकर कन्या के साथ ही जाना पड़ता है। यह पात्र मंगल कामना का एक सूचक होता है। कन्या का छोटा भाई भी बरात के साथ आता है और इस प्रकार बधू को वर के गृह में पहुँचाकर दूसरे दिन सब वापस चले आते हैं। बरात के आने और वापिस जाने में दोनों गांवों के कुल देवताओं की भी पूजा करनी पड़ती है।

विवाह के कुछ ही समय पश्चात् द्विरागमन की रस्म होती है जिसमें वर तथा उसके मुख्य-मुख्य परिवारी तथा बन्धु बान्धव कन्या पक्ष के हाथ का कच्चा भोजन खाते और वहाँ से पुनः दान दहेज के साथ वरकन्या को विदा किया जाता है। उसके पश्चात वे दोनों पति-पत्नि के रूप में रहने लगते हैं। विवाह का प्रथम वर्ष समाप्त होने तक बधू के लिए कुछेक प्रतिबन्ध भी होते हैं। उसे चैत्र मास में पतिगृह पर रहना आवश्यक होता है और जेठ तथा सास-ससुर की उपस्थिति में अषाढ़ में अपने पीतृगृह में। उसके पश्चात हर दो तीन महीने में कन्या अपने मायके आया और जाया करती है। पुत्र प्राप्ति पर कन्या-पक्ष का औजी (ढोल बजाने वाला हरिजन) चैत्र में बर के घर आता और वस्त्राभूषण द्वारा पुरस्कृत किया जाता है।

गढ़वाल में विवाह की एक और प्रथा भी है जिसमें वर की उपस्थिति वाँछनीय नहीं है। ऐसे विवाह को 'टका-विवाह' कहा जाता है। गढ़वाल के शुल्क विवाह का मौलिक रूप यही है और अनमेल और बहु विवाह भी प्रायः इसी प्रथा पर आधारित हैं। वर की अनुपस्थिति में भी ऐसे विवाह हो सकते हैं। ऐसे विवाहों में भी वर पक्ष के कुछेक आदमी बरात के रूप में कन्या के घर जाते और बधू को दूसरे दिन वस्त्राभूषणों से सुसज्जित कर डोली पर बिठाकर ले आते हैं। वर की उपस्थिति में वर के घर पर ऐसे विवाहों के संस्कार उसी दिन कर लिए जाते हैं अन्यथा कुछ समय पश्चात बल्कि औलाद हो जाने पर भी विवाह संस्कार का परिच्छेद खुला रहता है।

ऐसे विवाह सामान्यतः निम्नकोटि के लोगों या गरीब जनता में होते हैं और अब धीरे-धीरे उनका अन्त होता जा रहा है।

बड़े भाई की मृत्यु हो जाने पर उसकी स्त्री से विवाह सम्बन्ध स्थापित करना भी गढ़वाल में काफी समय पूर्व से चला आता है और इसके लिए विवाह संस्कार की आवश्यकता नहीं पड़ती। यह चलन भी प्रायः निचले या पिछड़े हुए समाज में प्रचलित है। विधवा इसके लिए प्रस्तुत हो और देवर की परिस्थितियां भी इस व्यवस्था से मेल खाती हों, यह विचार कर ही ऐसा विवाह हो सकता है। उन दोनों में से किसी की ओर से आपत्ति उठने पर ऐसे विवाह नहीं हो पाते।

विधवा-विवाह भी गढ़वाल में कहीं-कहीं हो जाते हैं और केवल मजबूरियों के कारण और निम्न समाज में ही होते हैं। कृषक जीवन में प्रायः मनुष्य को ऐसी परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है कि जब उसे जोड़ीदार के बिना काम चलाना कठिन हो जाता है। इसलिए निस्सहाय विधवाएँ तथा विधुर अपने-अपने जीवन का मार्ग निर्माण करने के लिए समान जाति से विधवा विवाह करते देखे जाते हैं और गढ़वाल के रिवाजी कानून 'Customery Laws' के अनुसार विधवा विवाह या बड़े भाई की विधवा पत्नि के द्वारा उत्पन्न सन्तान को भी अन्य लोगों के समान ही अब पिता की सम्पत्ति का स्वामित्व प्राप्त हो जाता है। ऐसे विवाहों में भी संस्कारों की आवश्यकता नहीं पड़ती।

विवाहों के सम्बन्ध में गढ़वाली समाज के अन्तर्गत आजतक यह नियम चला आता है कि वे मैदानों से विवाह सम्बन्ध नहीं करते किन्तु अब आधुनिक युग में काफी ऊच्च शिक्षित या ऊँचे लोग इस नियम की सीमाओं को लांघने लगे हैं। देहरादून या अन्यत्र बसे हुए गढ़वालियों के साथ सम्बन्ध स्थापित करना अलबत्ता उस नियम के विरुद्ध नहीं है।

३–भोजन—गढ़वाल की भोज्य व्यवस्था का प्रकरण दयनीय भी है और घृणास्पद और ईर्षापूर्ण भी। दयनीय इसलिए कि गढ़वाल की अधिकांश निर्धन जनता को लगातार अबतक पर्याप्त भोजन नहीं मिलता और ईर्षापूर्ण और घृणास्पद इसलिए कि इनके भोजन में मांसाहार की मात्रा दिनों दिन बढती जा रही है। प्रायः देखा जाता है कि आज के महँगे समय में भी गढ़वाल का शायद ही कोई ऐसा घर हो जहाँ साल भर में १ मन से कम माँस आता हो और यही कारण है कि उत्तर गढ़वाल से प्रतिवर्ष शीतकाल में नीचे की ओर हज़ारों बकरे लेकर आने वाले बकरा-व्यापारी हमारे पेटों

की कब्रों में उन्हें दबाकर सदैव लौटा करते हैं और अब वे बकरों की पीठ पर व्यापारिक वस्तुएँ लाने के बदले बकरों को ही अपने व्यापार की वस्तु मानकर प्रस्थान करते हैं। मैंने यह भी अनुभव किया है कि मांस भक्षण के लिए आतुर कतिपय निम्न कोटि के गढ़वाली लोग मृतक बकरों और भेड़ों तक को खा जाते हैं जो कि भारतवर्ष के दूसरे भागों में कोई नहीं खाता।

गढ़वाल शाक्त प्रदेश होने के कारण, बकरों आदि की बली का, बंग देश की भाँति एक केन्द्र है। देवी के मन्दिरों पर नवरात्रों में बकरों के अतिरिक्त भोटों (नर भैंसों) तक की वहां बलि होती है। भगवती के पूजन के लिए की जाने वाले अठवाड़ों में कई-कई भोटों और बकरों का वध किया जाता है। किन्तु अब कुछ समय से हरिजन समाज में जागृति होने के कारण उन्होंने भोटों का खाना क्रमशः बन्द कर दिया है जिससे भोटों की बलि का प्रश्न विचारणीय हो गया है। किन्तु बकरों की खपत फिलहाल घटनी सम्भव नहीं दिखाई देती।

गढ़वाल के मांसाहार को प्रोत्साहन और प्रगति देने में वहां की भूत-प्रेत पूजा का काफी बड़ा हाथ है। इस भूत-प्रेत के विश्वास के कारण कभी भेड़, कभी बकरे, सूअर और मुर्गों का वध किया जाता है और इस प्रकार मांसाहारी जनता की दाढ़ें गरम होती हैं। शहरों के निकटवर्ती गावों में मांस के व्यापारियों द्वारा काफी मात्रा में मांस पहुँचाया जाता है या वे लोग स्वयं शहरों में आकर मांस खरीद ले जाते हैं, और दूर देहातों में लोग, व्यापारी दृष्टिकोण से समय-समय बकरे काटते और उन्हें बेचा करते हैं। एक विशेष बात जो गढ़वाल के मांस-भक्षण में अन्य प्रान्तीय मांसाहारियों से नहीं मिलती वह है 'बकरे को भून कर खाना'। बकरे को मारकर उसकी आंतें और पेट की दूसरी वस्तुएँ बाहर निकाल कर उसका पेट घास पत्तों से भर दिया जाता है और उसके पश्चात खाल के समेत वह आग में इस प्रकार भूना जाता है कि उसके सारे बाल अच्छी तरह जल जायें। उसके पश्चात वह अच्छी तरह धोकर काटा और बांटा जाता है जिससे बिना ही पकाये वह नमक-मिर्च मिलाकर भी खाया जा सके। गढ़वाल में जंगली जानवरों का शिकार और मछलियां भी मांसाहार की आवश्यकताओं की किन्हीं अंशों में पूर्ति करती हैं।

हमारे इस पर्वतीय इलाके में मांस-भक्षण क्यों उतरोत्तर बढ़ता जा रहा है इस पर मैं प्रायः विचार किया करता हूँ और यही निष्कर्ष होता है कि हमारी किन्हीं परिस्थितियों या किसी भोज्य पदार्थ के प्रभाव या अभाव से हमारे शरीर का कोई अंग शक्तिहीन हो रहा है जिसकी पुष्टि के लिए

प्राकृतिक रूप में हमें मांस भक्षण की इच्छा होती है। किन्तु यह क्या और क्यों है इसके सम्बन्ध में कुछ नही जान पड़ता। अनुमान से पता लगता है कि दूध दही और घी का अभाव प्रायः हमारे इस दुर्गुण का उत्तर-दायी है और इस ओर प्रयत्न होने पर गढ़वाल के मांस-भक्षण का आधिक्य घटाया बल्कि मिटाया जा सकता है।

गढ़वाल में आम तौर पर सुबह और शाम केवल दो बार भोजन किया जाता है जिसमें सुबह को प्रायः चावल दाल आदि खाये जाते हैं और शाम को रोटी-भाजी। इन दो भोजनों के अतिरिक्त यहाँ नाश्ता (कलेऊ) खाने का भी चलन है जो बासी या कभी-कभी ताज़ी रोटियों के रूप में अर्ध पेट या उससे भी कम हुआ करता था। आजकल चाय के अन्धाधुंध प्रचार ने नाश्ते की परिपाटी को पर्याप्त मात्रा में घटा दिया है जिससे चीनी या शक्कर जैसी मूल्यवान वस्तुओं पर भोजन का खर्च बढता जा रहा है। इस बढ़े हुए खर्च से यह अवश्य लाभ हुआ है कि पेट का दर्द जो समय-समय पर यत्र तत्र हुआ करता था, अब काफी कम हो गया है।

गढ़वाली भोजन में दूध-घी आदि पौष्टिक पदार्थों की काफी न्यूनता है और उसका कारण धनहीनता न होकर गढ़वाली समाज की आलस्य प्रकृति और उनके घरों को अव्यवस्था है। अपने गोधन को अच्छी तरह पालते रहकर उनकी इस कमी की कुछ न कुछ पूर्ति अवश्य हो सकती थी किन्तु गौचर की अत्यन्त कमी, गौशालाओं की निकृष्ट व्यवस्था, गढ़वाली समाज की इस ओर उदासीनता और गायों की उन्नत नस्ल के अभाव से अब नाम मात्र का गोधन रह गया है जिसमें दूध शेष नहीं है। और आज के कठिन समय में खरीद कर घी-दूध खाना, साधारण जनता की शक्ति से बाहर की बात है।

गढ़वाली पकवान सामान्यतः निकटवर्ती इलाके की ही तरह होते और उनके नाम भी मिलते जुलते होते हैं। यह समस्त पकवान क्रमशः अलग अलग श्रेणियों में विभक्त होते हैं और मनुष्य की भिन्न भिन्न स्थितियों और अवस्थाओं में उन्हें बनवाया और खाया जाता है। चुवा और ओगल के पकवान केवल व्रतों में फलहार के स्थान पर ही खाये जाते हैं जब कि मकर संक्रान्ति को खिचड़ी खाने का नियम है। इसी प्रकार श्रावण मास में परिस्थितियाँ अच्छी न होने पर भी एक दिन आवश्यक रूप में खीर खाने को कहा गया है और दीवाली आदि त्योहारों को पूड़ी-पकोड़ों के अलावा तवे की रोटी खाना निषिद्ध है

गढ़वाली भोजन में मंडुवे के पकवान बड़े ही असुन्दर और भद्दे होते हैं और उन्हें खाकर हमारे स्वास्थ्य में भलेही कुछ सुधार होता हो किन्तु वे पौष्टिक कदापि नहीं होते यह निश्चित है और इसलिए उसके पकवान खाकर तनिक देर के लिए हम अनुभव करते हैं कि हममें पर्याप्त तेजी है किन्तु उसके बाद ही हमारा पेठ पीठ से मिला होता है और भूख के कारण हम विह्वल हो जाते हैं। मुझे आश्चर्य होता है कि लगातार अब तक मंडुवे के बदले किसी दूसरे अन्न को अपनी खेती में उपजाने का हमने प्रयत्न नहीं किया और अपने 'मंडुवा-राजा' का स्नेह हमसे नहीं छूटता।

मंडुवे की खेती में आवश्यकता से अधिक परिश्रम करना पड़ता है क्यों कि उसके पौधे के साथ ही उसी के रुप का बर्षाती घास काफी उग आता है और फसल के कटने तक उसके खराब होजाने का डर बना रहता है। फसल हो चुकने पर खेती को छै महिने के लिए बंजर छोड़ना पड़ता है। बच्चे और बूढ़े उसे सरलता पूर्वक नहीं खासकते और न अपने अतिथि के लिए ही उसका उपयोग किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में मंडुवे को सदा के लिए गढ़वाल से बिदा करने का प्रश्न अत्यन्त महत्वपूर्ण और विचारणीय है।

मेरी दृष्टि में यदि गढ़वाल का कृषि विभाग गढ़वाल में मंडुवे के स्थान पर मक्की की उपज आरम्भ कराए तो जनताका इससे पर्याप्त लाभ हो सकेगा केवल परीक्षण के प्रथम एक-दो वर्ष तक कृषकों में भय बना रह सकता है परन्तु गेहूँ के बाद जेठ के महिने में मक्का बोकर भादों तक यानी धान की फसल के साथ साथ हमें मक्की की भी प्राप्ति हो सकती है और वह भी मंडुवे से अधिक ही। शिमला तथा काश्मीर के पहाड़ी इलाकों में सर्वत्र मक्की होती है और इसी कारण गढ़वाल की अपेक्षा उन स्थानों में अन्न की प्रचुरता है। आर्थिक स्थिति के अध्याय में भी इसका सुझाव दिया जारहा है।

गढ़वाल में मक्की होती है किन्तु केवल भून कर खाने मात्र के लिए। लोग उन्हें अपने बगीचों तथा साग-भाजी के खेतों में बोते हैं। यदि मंडुवे के स्थान पर हमें वह प्राप्त हो, तो उसकी रोटियाँ हमारे बच्चे और बूढ़े भी प्रसन्नता से खा सकेंगे और गेहुंओं के अभाव में सुन्दर पतली रोटियाँ और मक्की के शुद्ध हलुवे के द्वारा मेहमान के भोजन की भी व्यवस्था हो सकती है।

४-पहिनाव—यद्यपि गढ़वाल की वेषभूशा को साम्प्रदायिकता के दुष्प्रभाव से बचाने में सौंदर्यप्रियता की वर्तमान चकाचौंध का काफी हाथ रहा है और सभी जातियाँ समान रुप में ही उसके द्वारा आकर्षित हुई हैं

तथापि गढ़वाली पहिनाव में विभिन्न जातियों की पहिचान के कुछेक चिन्ह आज भी विद्यमान हैं। विशेषतः स्त्रीजाति के पहिनाव में अब तक परस्पर काफी अन्तर है।

हिन्दू स्त्रियाँ गढ़वाल में साधारणतः धोती-साड़ियाँ, कुर्ता-वास्कट अथवा जम्पर पहिनती हैं और बुढ़ापे में लावा-अंगिया धारण करती हैं किन्तु मुसलमान स्त्रियाँ चुस्त पायजामा तथा कुर्ते आदि पहिनती हैं और ईसाई स्त्रियाँ साड़ी जम्पर अथवा फ्राक। इसी प्रकार हिन्दू स्त्रियाँ जूता नहीं पहिनतीं, मुसलमानियाँ साधारण जूता या स्लीपर पहिनती हैं जब कि ईसाई स्त्रियों के पावों पर ऊँची एड़ी का बूट लगा होता है।

गढ़वाली पुरुषों में हिन्दू यदि साधारणतः धोती पहिनता है तो मुसलमान पायजामा और ईसाई पतलून। इसी प्रकार साम्प्रदायिक झगड़ों से डरकर मुसलमानों ने यद्यपि आज प्रायः गांधी टोपियाँ धारण करली हैं किन्तु फिर भी उनकी टोपियाँ प्रायः बालों वाली, किश्तिनुमा-गोलमोल अथवा तुर्की टोपी होती है। हिन्दू साधारण गढ़वाली टोपी या गाँधी टोपी पहिनता है और ईसाई टोप की ढूंढ करता, नंगे सिर रहता अथवा फेल्ट की गोल टोपियाँ पहिनता है।

अलग-अलग परिस्थितियों पर अलग-अलग प्रकार के पहिनाव का भी गढ़वाली विधान है। वर के द्वारा पहिनी जाने वाली पोशाक अन्य किसी समय काम में नहीं आ सकती। इसी प्रकार किसी की मृत्यु होने पर दस-ग्यारह दिन तक सिर पर उल्टी टोपी या सुफेद वस्त्र का एक छोटा टुकड़ा 'छोपली' के रुप में सिर पर रखना पड़ता है; बल्कि पुरुष मृतक की क्रिया करने वाले व्यक्ति को पूरे एक वर्ष तक जूता पहिनना निषिद्ध है। विधवा स्त्रियाँ रंग बिरंगे कपड़े नहीं पहिन सकतीं और साधू-साधुनियों को गेरुवा वस्त्र धारण करना पड़ता है तथा अठवाड़ों में देवी की पूजा के पश्चात नर भैंसे पर चक्रचोट मारने वाले व्यक्ति को एक लम्बा चोगा (खिलका) पहिनना पड़ता है।

गढ़वाली पहिनाव वास्तव में वहाँ के जलवायु के अनुसार स्थिर हुआ होगा, यह अनुमान होता है। गढ़वाल के उत्तरी हिमालय पर रहने वाले समस्त पुरुष स्त्रियाँ व बालक ऊन के कपड़े पहिनते है और इसी कारण वहाँ भेड़ बकरी पालने और ऊन के गृह उद्योग का चलन है। ठंडे सौफियाना कपड़े का रिवाज़ अधिकाँशतः ऐसे स्थानों में है जहाँ का जलवायु गरम या शीतोष्ण है। इसी प्रकार स्थान स्थान की पैदावार ने भी पहिनाव के निर्माण

में काफी हाथ बटाया है। राठ इलाके और भरदार में भाँग की खेती होती है और इसलिए भाँग की छाल की दस्तकारी से वहाँ के लोग भाँग के पट्ट, जिन्हें त्यूंखा या भंगेला कहते हैं, निर्माण करते और पुरुष तथा स्त्रियाँ उन्हें पहिनते हैं। अलमोड़ा के दुसांद और जिला टिहरी गढ़वाल के उत्तर पश्चिमी भाग में घागरे का भी चलन है और यह बाद्दियों के नाच में उनकी स्त्रियों द्वारा अब भी सर्वत्र पहिना जाता है। गढ़वाल के शादी विवाहों में वधू को अभी कुछ ही दिन पूर्व तक घागरे पहिनाने का रिवाज़ था बल्कि अब तक भी कहीं कहीं प्रचलित है।

गढ़वाली स्त्रियों के पहिनाव के पिछले इतिहास में गलेप या दोहर का भी एक युग रहा है जो अब तक भी जिले के कई भागों में विद्यमान है। यह गलेप केवल पांच छै हाथ लम्बे तथा साड़ी की चौड़ाई के मोटे तथा दोहरे सफेद कपड़े का, मगज़ी लगा हुआ, बनता था और उसे पहिनने में स्त्रियों को लम्बे और कम चौड़े मोटे कपड़े का एक कमरबन्ध 'पठग्वा' भी बाहर से कसकर बाँधना पड़ता था। किन्तु आज वह मिट चला है और कहीं कहीं उसी नाप की एकहरी काली या रंगीन चादरें पहिनने का रिवाज़ चालू है जिसमें प्रायः 'पठग्वा' की आवश्यकता नहीं पड़ती या अत्यन्त कम पड़ती है।

साड़ी या धोतियों के साथ पेटीकोट पहिनने का रिवाज गढ़वाल में कुछ ही समय से आया है क्योंकि आज तक मोटी धोतियों के साथ इसकी आवश्यकता नहीं पड़ती थी। किन्तु महीन कपड़े के साथ आकर पेटीकोट का ऐसा रिवाज़ गढ़वाल में चल पड़ा है कि लोग मोटी धोतियों के अन्दर भी उसे पहिनने लगे हैं और इस प्रकार कपड़े का यह अपव्यय अनिवार्य सा बन गया है।

गढ़वाल में देहाती लोगों के दर्मियान अभी तक झगुली या मिरज़ई पहिनने का भी चलन है जिसे ऊनी होने की स्थिति में 'चोली' कहा जाता है। यह मिरजई सदैव दोहरी बनाई जाती है और बटन के स्थान पर तनियों से उसमें काम लिया जाता है। ऐसी मिरज़ई के साथ दोहरा पायजामा पहिना जाता है और बिना बाढ़ की दुपल्लू टोपी।

पहिनाव की सादगी गढ़वाल के देहाती और पिछड़े कोनों की 'लंगोटी' के द्वारा पराकाष्ठा को प्राप्त हो गई है। यद्यपि अर्वाचीन पद्धति के प्रचण्ड झंझावत में लंगोटियाँ प्रायः निःशेष हो गई हैं, ताहम इन्हें पंजाबी कच्छों या मैदानी लंगरों में परिवर्तित हो जाना चाहिए, यह हमारे वर्तमान समाज की

एक प्रमुख आवश्यकता है। क्योंकि इस प्रकार पुरुष प्रायः अर्धनग्न होता है और सामाजिक अनुशासन के लिए ढके रखे जाने वाले अंग, उससे उघड़े ही रह जाते हैं।

स्त्रियों के पहिनाव के सम्बन्ध में मेरा सुझाव है कि खेती-बाड़ी तथा घास लकड़ी इत्यादि के लिए उनका ऐसा एक पहिनाव होना चाहिए जो आर्थिक व सामाजिक दृष्टि से भी लाभप्रद हो और जिसके द्वारा हमारे महिला समाज को भी अनुभव होने लगे कि वे अब एक परिवर्तित दुनिया में रह रहे हैं। सचमुच भी क्रान्ति की वर्तमान दुनिया में रहते हुए हम महिला समाज की उन्नति को अधिक समय तक नहीं रोक सकते और इसलिए उनके भाव परिवर्तन के लिए सर्वप्रथम उनके पहिनाव की बदली से श्रीगणेश होना चाहिए।

काम-धन्धे के अन्तरगत ही स्त्रियों को कई बार नदियां तैरने, पेड़ों या चट्टानों पर चढ़ने तथा तेजी से भागने का काम आ जाता है जिसमें साड़ी नुमा धोती से उनके समस्त अंगों को ढके रखना सम्भव नहीं है। आर्थिक दृष्टि से भी सात आठ रुपये की एक मोटी धोती की आयु हमारे काम-धन्धों पर अधिक से अधिक पांच-छः महीने हो सकती है, जिसका अर्थ कुर्ता जम्पर तथा पेटीकोट के अतिरिक्त १४ या १६ रुपया वार्षिक हुआ। यदि दो पेटीकोट और दो जम्परों का दाम भी इसमें जोड़ा जाय तो पूरा ३०) रु० होता है। यहां हमें यह न भूलना होगा कि धोतियों को फट जाने पर पेवन्द भी नहीं लगते और किसी भी दूसरे काम पर उनको इस्तेमाल करना सम्भव नहीं है।

उक्त तीस रुपये में मजबूत कपड़े के चार पंजाबी-काट के 'कुर्ता-सलवार' बना कर दो स्त्रियों के लिए काम की सूटें दी जा सकती हैं। साधारण ढीले-ढाले कुर्ता सलवार छः गज़ में आसानी से बन सकते हैं और फटने पर उनमें पेवन्द भी लग सकेंगे। उन्हें पहिन कर नदी तैरना, पेड़ या चट्टान पर चढ़ना या दौड़ना भी हो सकता है। शादी ब्याहों या मेले ठेलों में जाने के लिए साड़ी जम्पर इस प्रकार एक बार बनाकर काफी समय तक चल सकेगा। वास्कट या स्वेटर यथापूर्व इस्तेमाल होते रहेंगे।

स्त्रियों को जूता पहिनने की छूट देना भी आज का एक महत्वपूर्ण सवाल है। कई लोग इसे अव्यावहारिक कह सकते हैं क्योंकि पहाड़ों की चट्टानों पर पहुँचने वाली स्त्रियां जूता पहिन कर फिसल जावेंगी, यह उनका डर हो सकता है। किन्तु इसमें हम गढ़वाल जैसे ही दूसरे प्रदेशों में स्त्रियों को जूता

पहिनते पाते हैं और गढ़वाल में ही यदि पुरुष जूतियाँ पहिन कर प्रत्येक कठिन से कठिन स्थानों पर जा सकता है तो स्त्रियाँ आवश्य जा सकेंगी यह स्पष्ट है।

भंगेले पहिनना तो क्रमशः बन्द हो रहा है इसे समाप्त हो ही जाना चाहिए। बल्कि भंगेले की तरह पहिने जाने वाले कम्बल को उसी तरह न लपेट कर ऊन के सिले हुए कपड़े बनवा कर पहिनना चाहिए। भंगेले के उद्योग के लिए ऐसी कोई युक्ति निकलनी चाहिए जिससे उसका अच्छे से अच्छा उपयोग हो सके और भाँग की खेती करने वाले को उसका अधिक से अधिक लाभ हो। इस प्रकार वह सूत के मजबूत और सुन्दर कपड़े पहिन सकेंगे।

५-आभूषण—सौंदर्य प्रियता के अतिरिक्त, समाज के लिए गहनों की उपयोगिता केवल यही हो सकती है कि 'स्त्रीधन' को संचित निधि के रूप में रखने का यही एकमात्र साधन था। वास्तव में धनहीन समाज के अन्तरगत स्त्रीजीवन में बहुत ही कम ऐसे अवसर आते हैं कि जब इकट्ठी एक पूंजी पर उनका वैधानिक अधिकार होता है और पारिवारिक तथा सामाजिक स्वातंत्र्य भी। किन्तु आज अकेली सौंदर्य प्रियता के ही लिए आभूषणों का अस्तित्व रह गया है और उनका साम्पतिक महत्व स्त्रियों के हाथ से निकल गया। यह शायद इसलिए कि अशीक्षित होने के कारण स्त्री समाज आभूषणों की मौलिक आवश्यकता का महत्व न समझ सका और पुरुष समाज अपनी इच्छा के अनुसार उसकी परिभाषा करता गया।

आज स्त्री के किसी भी गहने को उसका पति जुए में हार सकता, गिर्वी रख सकता और किसी कंजरी को उपहार में दे सकता है किन्तु स्त्री को, एक साधारण सी, पावों की उङ्गलियों पर पहिनी जाने वाली, चाँदी की अंगूठी के खोजाने पर सैंकड़ों गालियां खानी पड़ती हैं। पढ़े लिखे और समझदार लोग भी प्रायः यह कहते सुने जाते हैं कि गहना आड़े समय पर काम आने वाली वस्तु है और जो लोग शादियों में कर्जे के रुपये से गहने बनाते हैं वह तो शादियों के बाद ही साहुकार की सम्पति बनते ही हैं। ऐसी स्थिति में यह सिद्ध हो जाता है कि स्त्रियों को पुरुषों के द्वारा सजाए जाने के लिए गहनों की सृष्टि हुई और उन्हें 'स्त्रीधन' समझना इसका मौलिक उद्देश्य नहीं था। मेरे विचार से गहनों की वास्तविक परिभाषा का गलत अर्थ करने में पुरुष समाज ने स्त्रियों की सरलता और पुरुष के लिए आत्म विस्मृति का अनधिकार लाभ उठाया है जिसका प्राकृतिक रूप में निराकरण होकर रहेगा।

गहने स्त्रियों के पास रहें और उनका स्वामित्व पुरुष के पास हो, इस

प्रकार इसकी आवश्यक व्यवस्था न हो सकी, जिसका परिणाम यह हुआ कि गहनों का समस्त धन निरा अपव्यय बन गया और आज हमारी आर्थिक स्थिति में यह एक चुभने वाला प्रश्न बन गया है। हम देखते हैं कि गहनों की परिपाटी की आड़ में चोर बाज़ारी का एक प्रचण्ड व्यापार चला हुआ है और देश की सम्पति का एक काफी बड़ा भाग अनधिकृत रूप में लोगों की जेबों में जा रहा है। परीक्षा के लिए यदि हम एक नवनिर्मित ज़ेवर को, जो एक दिन भी उपयोग में न आया हो, किसी सुनार के पास ले जाकर बेचना चाहें तो वह उसका आधा मूल्य हमें देगा, इससे अधिक नहीं। ऐसी स्थिति में अपनी खुली आँखों के सामने अपनी लूट होते देखकर भी हम इसका कोई हल नहीं निकाल सके हैं। यदि आभूषणों का स्वामित्व पूर्णतया स्त्रियों के हाथ दे दिया जाय तो मेरा खयाल है कि वे गहनों के रूप में अपने संचित धन की इस लूट को कदापि पसन्द न करेंगी और इसका अवश्य ही कुछ न कुछ हल निकल सकेगा।

गढ़वाली गहनों को प्रधानतः दो विभागों में रखा जा सकता है जोकि क्रमशः स्वर्ण और रौप्य आभूषण होते हैं। बीसवीं सदी के प्रथम चतुर्थांश तक गढ़वाल में एक नथ और एक बुलाक के अतिरिक्त सोने के कोई गहने न होते थे बल्कि यह भी सुहाग के चिन्ह के रूप में सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्तिमात्र के लिए आवश्यक माने जाते थे। शेष सब गहने चाँदी के बनते थे बल्कि गरीब जनता अधिकांशतः गिलट, पीतल व जस्त की हंसलियां व कड़े, मूंगे लाख व कांच के दानों की मालाएं, दुअन्नी, चवन्नी, अठन्नियों तथा रुपयों की मालाएं व हार और काँच की मोटी मोटी चूड़ियाँ पहिनती थीं। किन्तु आज आभूषणों की इतनी प्रगति हुई है कि एक प्रकार की बाढ़ ही आ गई।

आधुनिक गहनों का विभाजन मनुष्य के अंगों की मान्यता के अनुसार ही हुआ है। हाथों व गले से ऊपर के भाग में आज तक पहिने जाने वाले समस्त चाँदी के गहने अब क्रमशः लोप होते जा रहे हैं और स्त्री शरीर के इस उर्ध्व भाग को आज की दुनियां स्वर्णयुक्त बनाने जा रही है। पैरों पर पहिने जाने वाले गहने अभी तक चांदी के ही बनाये जाते हैं किन्तु बड़े तथा धनवान लोग चांदी की ओर इतने उदासीन हो गये हैं कि इसके बदले वे पावों को बिना ही गहनों या नाम मात्र के गहनों से ढका रखना चाहते हैं। पावों पर सोने के गहने नहीं पहिने जाते क्योंकि स्वर्ण जैसी पवित्र वस्तु को पाँव पर नहीं लगाना चाहिए यह लोगों का विश्वास होता है।

गहनों के सम्बन्ध में आज गढ़वाल के अन्तर्गत दो विचार पद्धतियाँ

काम करती हैं। एक तो वे लोग हैं जो पढ़े लिखे होने के कारण गहनों को आवश्यक नहीं मानते और किन्हीं खास ही अवसरों पर उनका उपयोग करते हैं। ऐसे लोग मैदानों में या बाहर कहीं भी जाकर नाक की लौंग और कानों के एकाध जेवर के अतिरिक्त स्त्रयों को कोई गहना नहीं पहनाते और आगे के लिये ऊपरले कानों पर पहिने जाने वाले मुर्खलों जैसे अनावश्यक गहनोको सर्वथा मिटाने चले हैं। दूसरे वे लोग हैं जो गरीब होते हुए अनपढ़ भी हैं और गढ़वाल के बाहर आकर भी जिनकी स्त्रियाँ चांदी के गहनों से लदी रहती हैं और उन्हें उतारना वे लोग अपमान या अपशकुन समझते हैं। ऐसे लोगों की गढ़वाल में काफी बड़ी संख्या है और उन्हीं की कमाई पर अधिकांशतः ठगी का यह काम चालू है।

गढ़वाल में बहुत-से लोग ऐसे हैं जो विद्वान और समझदार तो नहीं हैं किन्तु जिन्हें स्वर्ण के आभूषण बनाने के लिए पर्याप्त धन प्राप्त है। ऐसे लोग रुपये को बैंकों अथवा डाकखानों में रखने के विश्वासी नहीं हैं और इसलिये गहने बनवाकर गरीब और साधारण ग्रामीणों को इस अपव्यय की सीख देते और उनपर अपना रौब जमाए रहते हैं। मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि हमारी ऐसी निर्धनता में आज विवाहों की स्वर्णाभूषणों की मांग दिन-प्रति-दिन बढ़ती जा रही है और शुल्क विवाहों का खर्च तो पराकाष्टा को प्राप्त होता जा रहा है। मेरे विचार से गढ़वाली उच्च समाज को विवाह के लिये साधारण से दो तीन गहनों का नियम स्थिर करके, गहनों की चिल्लाहट से पृथक अपना एक समूह बनाना चाहिए और इस प्रकार उन लोगों की उच्चता का एक धरातल निर्माण करना चाहिए जो शुल्क विवाह से सदैव अलग रहे हैं और रहना चाहते हैं। गढ़वाल के उच्च—चाहे वे किसी भी जाति के हों—लोगों को जानने की इस प्रकार यह एक कसौटी हो जायगी और शुल्क विवाहों का भी प्रतिकार और बहिष्कार किया जा सकेगा।

गढ़वाल में निम्नलिखित गहनों का चलन है जिन्हें धारण करने वाले अंग के साथ उन्हें लिखा ज.ता है।

१—सिर पर-बीड़ी तथा सुहाग बिन्दी। यह पहिले चांदी की भी बनती थी किन्तु अब केवल सोने की ही बनती है। अभी यह केवल उन लोगों तक ही सीमित है जो धनिक हैं।

२—कान पर--ऊपरले पल्लुओं पर मुर्खले पहिने जाते हैं जो प्रायः चांदी के ही होते हैं किन्तु पिछले कुछ वर्षों से इनका स्वर्ण में रूपान्तर हो रहा है और कहीं कही इन्हें मिटाने का भी प्रयत्न हो रहा है। निचले कान पर

कर्णफूल, टॉप्स, गोरख, मुर्की और कुंडल आदि पहने जाते हैं। कर्ण-फूल और टाप्स अधिक चल पड़े हैं।

३—नाक पर--नथ या लौंग पहिनी जाती है और बिचले नाक पर बुलाक या बुल्ला। अधिकांश स्त्रियां अब इन सभी के बदले केवल लौंग धारण करती हैं क्योंकि काम काज के समय प्रत्येक को लादे रखने में उन्हें अत्यन्त असुविधा रहती है। नथ या लौंग को गढ़वाल में सुहागिन स्त्रियां ही पहिन सकती हैं और पति के जीवन तक उसे एक पल के लिए भी नहीं उतार सकतीं।

४—गले पर--पहिले हंसुली, माला आदि चांदी के जेवर पहिने जाते थे किन्तु अब सोने के गुलबन्द, हार, लॉकेट या कहीं कहीं छोटी छोटी हंसलियाँ भी पहिनी जाती हैं। गावों में अभी तक गुलबन्द और शहरों में हार, लाकेट इत्यादि अधिक संख्या में हैं।

५—हाथ पर--उंगलियों पर तो अंगूठियाँ इससे पूर्व चांदी की ही पहिनी जाती थीं किन्तु अब कहीं कहीं सोने की अंगूठियाँ पहिनी जाती हैं और अन्यत्र इसका चलन ही बन्द सा होता जा रहा है। इसी प्रकार पहुंचे पर पहुंचियाँ, चूड़ियाँ आदि कुछ समय पूर्व चाँदी के ही पहिने जाते थे किन्तु अब सोने की चूड़ियाँ, दस्त बन्दियाँ आदि चल पड़े हैं और पहुंचियाँ भी सोने की बन चली हैं। साधारण समाज में अभी तक हाथ पर सोने के इन गहनों का रिवाज काफी कम है।

६—छाती पर--गढ़वाल में कही कहीं चाँदी के बटन तथा उनको जुड़ाने वाली चाँदी की सांकल भी उपयोग में आती है किन्तु यह अधिकांशत: पुरुषों के द्वारा। घड़ियों की जंजीरें भी कोई कोई लोग चाँदी की पहिनते हैं।

७—पावों पर--चांदी के कड़े, झिंवरी, लच्छा, चेन, पाजेब-अमृति तथा पौटे पहिने जाते हैं। लच्छे व अमृति का रिवाज अधिक है।

६-मकान—गढ़वाली मकानों का रूप प्राचीन काल से एक-सा चला आता है और अब तक केवल इतना अन्तर उसमें आ सका है कि अब वे अधिक ऊंचे तथा फैलाव वाले बनने लगे है। शहरों में अलबता अच्छे अच्छे भवनों का निर्माण हो गया और होता जा रहा है किन्तु वे मेरे इस विषय के अन्तरगत नहीं आते।

साधारणत: गढ़वाली मकानों को चार अलग अलग श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है जो कि क्रमश: तिबारी, डंड्याला, एकहरे घर और भ्वींमुंडा के नाम से पुकारे जाते हैं। तिबारी और डंड्याले सामान्यत: एक

ही जैसे होते हैं केवल सहन पर खड़ी की गई लकड़ी के रंग रूप से इनकी अलग अलग संज्ञायें बन गई हैं और डंड्याले का सहन तिबारी की अपेक्षा कम चौड़ा होता है। पुरानी तिबारियों पर पत्थर के चौड़े चौड़े छज्जे भी लगते थे और डंड्यालों पर कम चौड़े, बल्कि नहीं भी होते थे। डंड्याले-तिबारियों का एक नया रूप भी कुछ समय से चल पड़ा है जिसे बन्दमकान कहा जाता है और जिसमें सहन पर केवल लकड़ियों के काम के बदले दरवाजे खिड़कियाँ लगाई जाती हैं और छज्जे तो अब डंड्यालों व बन्दमकानों पर लग ही रहे हैं। इकहरे घर केवल उन लोगों के होते है जिनमें सहन तथा बरामदे के लिए लकड़ी का व्यय वहन करने की शक्ति नहीं होती।

गढ़वाल के अमीर-गरीब और छोटे-बड़े सबके मकान पत्थरों के बने होते हैं और उनमें लकड़ी का काफी खर्च होता है। इनके नापों की १९-२७, १९-३१, या १५-४५ जैसी निश्चित परिभाषाएं होती हैं और उन्हें चारों ओर से समकोण बनाया जाता है। आरम्भ में उनकी दिवालों की आधार-शिला काफी खुदाई के साथ रखी जाती है और उस दिन गणेशपूजा अवश्य की जाती है। राज-बढ़ई को भी उस दिन पिठाई और पकोड़े लड्डुओं से सम्मानित किया जाता है। पिठाई की इस परिपाटी को इसके पश्चात प्रवेशद्वार या सहन के खम्भ खड़े करते हुए पुनः दुहराया जाता है और उसके साथ-साथ पकौड़ियों का वितरण भी। प्रवेश-द्वार तथा सहन की ऊपरली लकड़ी पर गणेश की मूर्तियाँ खोदी जाती हैं और एक सुपारी तथा तिल व अक्षत भी लाल कपड़े की छोटी सी पोटली पर उसपर लटकाए या बांधे जाते हैं। यह बात गढ़वाल में मंगलमय मानी जाती है।

गढ़वाली मकान म्वीमुंडा के अतिरिक्त सब दो मंज़िले होते हैं और डंड्याला तिबारी तथा बन्द मकानों पर ऊपर नीचे एक कमरे से लेकर चार चार तक कमरे होते हैं तिबारी या डंड्याला इत्यादि उन कमरों के अतिरिक्त आगे से बनाए जाते हैं जिनके दोनों किनारों पर, अधिक लम्बा होने की स्थिति में, दो छोटी-छोटी कोठरियां बनाई जाती हैं जिन्हें बैठक के लिए उपयोग में लाया जाता है। सहन के नीचे के बरामदे को हाट कहा जाता है और उस हाट का प्रवेश द्वार भी पर्याप्त चौड़ा होता है। ऊपरले सहन के आगे एक हाथ या इससे भी अधिक चौड़ा पत्थर का छज्जा बनाया जाता है और कई मकानों पर सामने के अतिरिक्त दोनों ओर (दायें तथा बांए) छज्जे लगे होते हैं। मकान के दाईं तथा बाईं ओर ऊपरले मंजिल में खिड़कियों के ऊपर छोटे-छोटे छज्जे भी बनाए जाते हैं जो तुलसी के पेड़ तथा

फूल के गमले रखने के काम आते हैं। लोग प्रायः उनपर कद्दू के दाने रखदेते हैं।

ख्वीमुंडा मकान एक मंजिल मकान को कहते हैं जो आजतक साधारण लोगों तथा निर्धन जनता के द्वारा निर्माण किये जाते थे। ऐसे मकानों पर केवल एक या दो ही कमरे होते थे और बरामदे भी-प्रायः ना के बराबर ही। इसी प्रकार इकहरे मकानों के आगे से भी कोई बरामदा न होता था और न दूसरे मंजिल के आगे से कोई सहन ही। मकानों पर बरामदे या सहन बनाने के लिए गढ़वाल में लकड़ी आदि पर पर्याप्त व्यय होता है जो धनहीन समाज की शक्ति से बाहर होकर उनके इस पार्थक्य का कारण बनता है। अब गढ़वाल में, विशेषतः शहरों में, एक मंजिल कई-कई कमरों वाले मकान बनने लगे हैं।

गढ़वाली रहन-सहन का मान ऊपर उठने के साथ अब मकानों की बनावट में भी क्रमशः उन्नति होने लगी है। मकानों के छज्जों के आगे अथवा दाईं-बाईं ओर निमदरियां बननी आरम्भ होगई हैं जिन पर लकड़ी या लोहे की जाली लगने के कारण सुन्दरता तो आ ही गई है, साथ ही बच्चों के गिरने का भय भी दूर हो गया है।

गढ़वाली मकानों को प्रायः दक्षिण या पूर्व के मुंह का बनाया जाता है, केवल साधनों की अनुपस्थिति में ही दूसरी दिशाएँ ली जाती हैं। यह भी ध्यान रखा जाता है कि मकान सम्पन्न होने पर अपनी निचली सतह के दक्षिण-पश्चिमी मकान पर अपनी परछाईं या छत का पानी न डाले। जिसके मकान पर इस प्रकार उसकी परछाईं या छत का पानी गिरता हो वह उसके लिए दुर्भाग्य का सूचक माना जाता है।

गढ़वाली मकानों की ढलवां छतें होती हैं जो प्रायः पत्थर की स्लेटों की होती हैं और दोनों ओर की ढलवां छतों को जोड़ने वाली मुंडेर 'धुर्पाला' के नाम से पुकारी जाती है। यह धुर्पाला ही मकान का अन्तिम काम होता है और उसे प्रायः बकरे की बलि के साथ सम्पन्न किया जाता है। उस दिन राज व बढ़ई को उसका समस्त बकाया देकर इनाम में कपड़े लत्ते तथा गहने इत्यादि तक दिये जाते हैं जिससे वह प्रसन्न होकर मकान की छत से उतर जाय।

मकान के सम्पूर्ण हो चुकने पर गृह प्रवेश के लिए एक शुभ दिन निश्चित किया जाता है। उस दिन गणेश पूजा तथा इष्टदेवों का पूजन कर होम आदि के द्वारा मकान की प्राण प्रतिष्ठा होती है और बन्धु बान्धवों तथा

ब्राह्मणों को भोजन दिया जाता है। उस दिन के पश्चात् यह मान लिया जाता है कि वह मकान निवास के योग्य बन गया और अब भूत, प्रेत आदि का उसमें कोई डर नहीं। भोजनादि की पवित्रता तथा गोपनीयता के नियम भी उसी दिन से लागू कर दिए जाते हैं और उसमें निवास आरम्भ हो जाता है।

गढ़वाली मकान बाहर से चूने या सफेद मिट्टी से ही प्रायः पोते जाते हैं। ग्रामसुधार विभाग के प्रचार से इस दिशा में पर्याप्त उन्नति हुई है। सहन तथा खिड़की-दरवाजों की लकड़ियाँ भी रंगी जाती हैं और इस प्रकार बाहरी सजावट का ध्यान रखा जाता है। किन्तु मकानों की आन्तरिक सजावट का गढ़वाल में ध्यान नहीं रखा जाता यह एक अप्रिय रुत्य है। मैंने कई टीन की छत वाले ऐसे मकानों को देखा है जिनके अन्दर की दीवालों पर पाँच-सात वर्ष तक भी मिट्टी-गोबर का साधारण पलस्तर भी नहीं लगा था और कमरों में विभिन्न वस्तुओं के ढेर अस्त व्यस्त पड़े थे।

गढ़वाल के शहरों के अतिरिक्त देहातों में भी कई जगह बड़े-बड़े और सुन्दर मकान बने हुए हैं जिनकी वस्तुतः गांवों में उपयोगिता नहीं है। पौड़ी में सुन्दर भवनों की दिनों-दिन बढ़ती हो रही है और इसी प्रकार टिहरी के इर्द-गिर्द तथा लैन्सडौन में भी नये-नये रूप वाले तथा बड़े-बड़े मकान बनते जा रहे हैं।

गढ़वाल में कई जगह मकानों के निचले कमरों में गाय-भैंस भी रखे जाते हैं और उससे मकान में काफी मैलापन और कीचड़ बना रहता है। अधिकांशतः गांवों में पशुओं के लिए गौशालाएँ भी बनाई जाती हैं जोकि मकानों से कुछ फासले पर होती हैं। भेड़-बकरियां तथा गाय भेंस काफी संख्या में पालने वाले लोग गांव से दूर अपनी खेती में या पहाड़ों के निकट गौशालाएँ बनाते हैं जहाँ एक कुटुम्बी जन को भी ग्वाले की तरह महीनों तक रहना पड़ता है।

अब नये ढंग से गढ़वाल में मकान बनाए जाएँ, ऐसा वातावरण बनता जा रहा है। नये बनने वाले मकानों में प्रायः स्नान तथा रसोई घर की पृथक व्यवस्था की लोगों को याद आने लगी है जिससे विदित होता है कि इस दिशा में हम आगे बढ़ रहे हैं। सचमुच भी प्राचीन काल के रहन-सहन में मनुष्य को जितने स्थान या साधनों की आवश्यकता थी उसमें आधुनिक युग के व्यक्ति का गुजारा नहीं है और इसलिए भवन-निर्माण विशेषज्ञों तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं को गढ़वाली नये मकानों के ऐसे कुछ

रूप निर्धारित करने चाहिएँ जो विभिन्न आर्थिक स्थितियों और रुचियों के अनुकूल हों और डंड्याला तिवारी के ढाँचे को छोड़कर भी उसकी समस्त सुविधाएँ कम मूल्य में हमें प्राप्त हो जायें।

फूल और तुलसी के पेड़ों को मकानों के समक्ष रखने की ओर गढ़वाल में उदासीनता दिखाई दे रही है। यह ऐसा काम है जिसे प्रोत्साहन व प्रगति मिलनी चाहिए बल्कि घर-घर में उसका प्रचार होना चाहिए।

छूत छात—गढ़वाल में छूत छात है भी और नहीं भी है। लांग के खेल में उतरने वाले बादी हरिजन को गांव के मुखिया (चाहे वह किसी भी वर्ण का हो) के कन्धों पर बिठाकर लेजाया जाता है और पाण्डव नाच में तो, बहुधा देवशक्ति के जोश में, औजी हरिजन को कन्धे पर बिठाकर नाचने की परम्परा है ही। ऐसी स्थिति में छूत छात का गढ़वाल में क्या दृष्टिकोण हो सकता है इसका सहज ही अनुमान होजाता है। अलबत्ता हरिजनों का छूया हुआ पानी उच्च वर्ण के लोग नहीं पी सकते यही इस प्रश्न का सब कुछ किसी जिज्ञासू के समक्ष आ सकता है। पिछले वर्षों में गढ़वाल के डोला पालकी के प्रश्न ने दुनिया के सामने गढ़वाल का जो चित्र उपस्थित कर दिया था उससे हमारी धार्मिक कट्टरता बाह्य जनता के लिए असह्य हो चली थी। किन्तु हमारे पारस्परिक सम्बन्धों को निकट से देखने वाला कोई भी व्यक्ति बलपूर्वक कह सकता है कि हरिजनों के साथ होने वाले व्यवहार में गढ़वाल से अधिक उदारता अन्यत्र कहीं नहीं।

गढ़वाल के डोला-पालकी का सवाल सामाजिक या धार्मिक न होकर आर्थिक तथा राजनीतिक था और सवर्ण हिन्दुओं से बदला चुकाने की दृष्टि से निर्माण किये गये इस प्रश्न से साधारण ग्रामीणों के भड़क उठने की बात न्याय संगत न भी हो किन्तु स्वाभाविक अवश्य थी। मैं स्वयं लैन्सडाउन में हुई हरिजन कान्फ्रेन्स में उपस्थित था और मैं देख रहा था कि गढ़वाल की बदनामी के इस प्रश्न को पर्दे के पीछे से कौन सी शक्ति तूल दे रही थी। आर्थिक दृष्टि से ऊपर उठे हुए हरिजनों को डोला-पालकी के प्रश्न से भी पूर्व गढ़वाल समाज किस दृष्टि से देखता रहा है उसका वहाँ की कई घटनाओं के द्वारा साक्षात्कार होजाता है। किन्तु आर्थिक स्थिति के वैषम्य पर एक ही वर्ण के व्यक्तियों में मालिक और सेवक का नाता हो सकता है फिर दो अलग-अलग वर्ण के लोगों का तो कहना ही क्या है।

गढ़वाली छूतछात केवल हरिजनों से ही न होकर अन्यत्र भी विद्यमान है। सामान्यत: इस प्रश्न के गढ़वाल में दो अलग-अलग रूप हैं। पहिला

अंग स्पर्श मात्र से छूत होना और उसकी शुद्धि के लिए स्नानादि का विधान है। ऐसी छूत जच्चा से, गौहत्यारे से, कोढ़ा या किसी छूत के रोग वाले से तथा छोटे भाई की बधु और भानजे की स्त्री से होती है, हरिजन से नहीं। इनमें से गौहत्यारे और जच्चा को क्रमशः चान्द्रायण होजाने या निश्चित अवधि पूरा होने पर छूत के दोष से मुक्त कर देने का विधान है। किन्तु बाकियों के लिए यह रोक अकाट्य होती है। छोटे भाई की वधु तथा भानजे की स्त्री से को जाने वाली छूत के पीछे घृणा का भाव न होकर पर्दे के सामाजिक बन्धन की प्रेरणा है जब कि शेष को अपवित्रता व रोग आदि की दृष्टि से नहीं छूया जाता।

छूत छात का दूसरा रूप वह है जिसमें अस्पृश्य के छूए हुए पानी को न पीने का प्रश्न आता है। अपवित्रता तथा छूत के रोग की श्रेणी में आने वाले उपरोक्त कारणों के साथ किसी निश्चित अवधि तक मृत व्यक्ति का परिवार, पानी सौच न किया हुआ व्यक्ति, हरिजन और ऋतुकालीन स्त्री भी आजाते हैं। बल्कि पूरे २६ दिन तक जच्चा का भी इस कोटि में स्थान होता है। इन सबको शारिरिक अपवित्रता के लिए अछूत माना जाता है और हरिजन तथा छूत के रोग वाले के अतिरिक्त यथा समय इस छूत के दोष से सभी मुक्त हो जाते हैं।

उपरोक्त दोनों छूतों के भी दो भिन्न-भिन्न विभाग हैं जो 'सामयिक' और 'स्थायी' के नाम से सम्बोधित हो सकते हैं। 'सामयिक' की पंक्ति में केवल निश्चित समय तक अछूत समझे जाने वालों को रखा जा सकता है जैसे जच्चा, गौहत्यारा, मृत व्यक्ति का परिवार, पानी सौच न किया हुआ और ऋतुकालीन स्त्री। इन्हें समयानुसार या कुछ उपाय के द्वारा पवित्रता प्राप्त हो सकती है। स्थायी अछूतों की पंक्ति में आने वाले छोटे भाई की वधु तथा भानजे की स्त्री और हरिजन ही होते हैं जिनके मुक्त होने का मार्ग प्रायः निशेष है। कोढ़ी तथा छूत के रोग वाले को भी नीरोग होने पर दोष रहित मान लिया जाता है।

भोजन बनाने व पूजा करने वाला व्यक्ति भी औरों से नहीं छूता। इस में भोजन और देवताओं की पवित्रता और पूजनीयता का ध्यान रखा गया है।

हरिजनों से होने वाले छूत-छात के कारणों की ढूंढ करते हुए बहुधा हम आवेश में आकर समझ लेते हैं कि हिन्दू वर्ण व्यवस्था का यह अमानुषिक और पैशाचिक कृत्य था और उसके प्रवर्तकों और संस्थापकों ने मनुष्य के इस भेद से निर्दयता की पराकाष्ठा करदी है। किन्तु यह प्रश्न इतनी

शीघ्रता से विचार कर निर्णय देने का नहीं है। आर्य लोग आए और उन्होंने यहां की पराजित जातियों को (जिनमें हरिजन भी हो सकते हैं) दास बना दिया; यहां तक तो ठीक है। किन्तु दास बनाने की यह विचित्र पद्धति किस प्रकार निकली, यह बिना किन्हीं विशेष कारणों के नहीं हो सकता। ठंडे दिल से इस प्रश्न की वैज्ञानिकता को देखने की आवश्यकता है।

हिन्दू धर्म मनुष्य की आन्तरिक शुद्धता और मानसिक पवित्रता के लिए चलाया गया एक महान धर्म है जिसमें पग पग पर मनुष्य के नैतिक और आध्यात्मिक जीवन को मानवोचित बनाए रखने का ध्यान रखा गया है और तदनुसार उसके खान-पान, शादी-ब्याह और आहार-विहार के असंख्य नियमों का उसके सामने ढेर कर दिया गया है। आज की पाश्चात्य सभ्यता में मनुष्य की स्वच्छन्दता में अड़ने वाले धार्मिक नियमों को रुढ़ी वादिता अथवा पिछड़ापन कहा जाता है क्योंकि पाश्चात्य देशों में ऐसी कोई धार्मिक या सामाजिक रुकावटें मनुष्य के लिए नहीं हैं और इसी कारण वहाँ की विचार प्रणाली की विकृति ने दुनिया के विनास की सामग्री को आज प्रस्तुत किया हुआ है।

प्रत्येक जाति का रक्त शुद्ध रहे जिससे उसकी नस्ल में खराबी न आए यह हिन्दू धर्म का मौलिक सिद्धान्त है क्योंकि अन्यथा वर्णशंकरों की वृद्धि होकर समाज व धर्म के क्षेत्र में परस्पर विरोधाभास होगा और समस्त संसार वायु के ढेर में परिणित हो जायगा। इसी दृष्टि से भारतवर्ष की पराजित जातियों (जिन्हें आज हरिजन कहा जाता है) के अन्तरमिश्रण से विजेता आर्यों को पृथक रखने के लिए परस्पर छूत छात के नियम का आविष्कार हुआ जिससे सफाई के लिए किसी मकान के अन्दर स्वतंत्रता पूर्वक आने वाली किसी सुन्दर भंगन से किसी आर्य का मन न लग जाय अथवा कोई सुन्दर भंगी किसी घर की स्त्री से चार आँखें न करले। इस छूत छात का प्राथमिक रूप आज की छोटे भाई की वधु या भानजे की स्त्री से होने वाली छूत के समान ही था और उसमें घृणा का भाव नाम को भी नहीं था। किन्तु सेवा के कार्य में रहकर भोजन वस्त्र आदि की निश्चिन्तता ने हरिजनों को भूमि रहित बना दिया और धीरे-धीरे मैला-कुचैला और गन्दा भी। वे उच्च जातियों पर आश्रित हो गए और इस प्रकार उनके आर्थिक जीवन का सर्वथा ह्रास हो गया। स्वभावतः कालान्तर में वे अछूत माने जाने लगे क्यों कि अब सचमुच वे इस योग्य होगये थे।

अब पुनः समय आ गया है कि समाज का पुनर्संगठन हो और इसलिए हरिजनों के उस स्वच्छ और मौलिक रूप, जो घृणा की भावना के बिना ही

अछूत बना दिया गया था, के आधार पर उनके साथ के सम्बन्ध स्थापित होने जा रहे हैं। विधान परिषद ने एक विशिष्ट धारा के अनुसार छूत छात की कट्टरता को अपराध स्वीकार कर दंडनीय मान लिया है। ऐसी स्थिति में समस्त देश के लोगों के साथ गढ़वाल के सार्वजनिक कार्यकर्ता और महत्वाकांक्षी लोग भी अपने सामने आने वाली परिस्थितियों के अन्तर्गत उदार और प्रतिस्पर्धी भावना से युक्तियों और अवसरों की ढूंढ कर रहे हैं कि इस मानवोचित तथा राष्ट्रीय कार्य में किस प्रकार और कितनी शीघ्रता से वे हाथ बटाएँ। छुवाछूत के उन्मूलन के लिए इस प्रकार धरातल स्वत: निर्माण होता जा रहा है और वातावरण भी अनुकूलता की ओर अग्रसर है।

पिछले वर्ष गढ़वाल में हरिजनों के जनेऊ धारण करने का काम बड़े वेग से चल रहा था और सुना है कि कई ब्राह्मण युवक दत्त-चित्त से जनेऊ वितरण का काम करते हुए हरिजनों के घर भोजन करते जा रहे थे। लोगों का कहना है कि धन कमाने का यह उन्होंने एक साधन बना लिया था। जो भी हो किन्तु इस प्रश्न को उदार दृष्टि से विचार कर हमें ज्ञात होता है कि उनका वह कार्य ब्राह्मणोचित था और देश तथा जाति के उत्थान में अड़ने वाले धार्मिक व सामाजिक नियमों का संशोधन करना ही ब्राह्मण का कर्तव्य होना चाहिए, उन पर अड़े रहकर धर्म का सत्यानास करना नहीं। इसी प्रकार श्री दयाशंकर भट्ट का एक हरिजन लड़की से विवाह करने का सवाल भी इस दिशा में काफी महत्वपूर्ण कदम है। मेरे विचार से यदि इन कार्यों में लेशमात्र भी हरिजनोद्धार या अस्पृश्यता निवारण की लगन है तो ये लोग प्रोत्साहन और सम्मान के पात्र हैं।

जनेऊ वितरण के गतवर्षीय कार्य को निकट से देखकर मुझे उसकी कुछेक त्रुटियां दृष्टि आ रहीं थीं जिनसे हरिजनोद्धार अथवा अस्पृश्यता निवारण में होने वाले विलम्ब का अनुमान लग रहा था। मैंने देखा कि वह कार्य अत्यन्त गोपनीय ढंग से हो रहा था। यदि कार्यकर्त्ताओं को यह विश्वास हो कि उनके मन पर इस मानवोचित कार्य की सच्ची लगन है तो उनके सामने डरने का कोई कारण नहीं होना चाहिए। उनका कोई कुछ न बिगाड़ सकेगा। इतना अवश्य उन्हें करना चाहिए कि अपने जनेऊ धारण करने वाले शिष्यों को जनेऊ की महानता और उपादेयता के परिचय स्वरूप अत्यधिक नम्र और व्रतधारी (प्रतिज्ञा निभाने की शक्ति युक्त) बनने का मूल मंत्र दें, जिसका, जनेऊ पहिन कर उनमें प्रायः अभाव हो जाता है। मैंने स्वयं अनुभव किया कि अभिवादन की परम्परा का ऐसे लोगों में सर्वथा लोप हो

गया था और जनेऊ देने वाले गुरु जी की "मांस भक्षण छोड़ दो" शिक्षा को निभाने में भी उन्हें अपनी शक्ति पर पर्याप्त शक था।

छुवा छूत निवारण के क्षेत्र में श्री बलदेवसिंह आर्य के भारतीय संसद प्रवेश से भी काफी प्रगति होगी, यह निश्चित है क्यों कि आज का सभ्य समाज उन्हें सम्मान के साथ अपने घर आमंत्रित करने और उनके साथ चाय पान और भोजन करने में गौरव अनुभव करेगा। कालान्तर में इसकी प्रतिक्रिया यह हो सकती है कि हरिजन भी साफ सुथरे हो जायेंगे और ब्राह्मण राजपूत लोग उन्हें तदनुसार अपने साथ बिठाने में संकोच न करेंगे। वैसे भी, श्री बलदेव सिंह आर्य राष्ट्रीय दृष्टि से समाज की इन समस्याओं पर ठंडे दिल से विचार करने वाले व्यक्ति हैं और वे इसका बुद्धिमत्ता पूर्ण हल निकालेंगे इसमें संशय नहीं है।

बोली भाषा—पर्वतीय प्रान्तों की परस्पर मिलती-जुलती भाषाओं में 'गढ़वाली' का एक विशिष्ट स्थान है। यह भाषा संस्कृत और प्राकृतिक भाषा के संयोग से बनी हुई एक उत्कृष्ट भाषा है और इसकी लिपि ठेठ देवनागरी है। उन्नीसवीं शताब्दि से पूर्व इस भाषा में गढ़वाली साहित्य का सृजन भी हुआ है। गढ़वाल का ढोलसागर, रौखालियां और तंत्र-मंत्र का काफी बड़ा साहित्य हस्तलिपि में आज भी स्थान-स्थान पर मिलता है बल्कि भूमि सम्बन्धी लेन-देन तथा रुपये के ऋण या चुकत में अबतक यहां गढ़वाली बोली में ही लिखने पढ़ने का चलन है। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से मैदानों की ओर आने वाले गढ़वालियों का बाहुल्य इस भाषा के अंग विच्छेद का कारण बना और देखते २ ही उर्दू के अनेक शब्द गढ़वाली भाषा में मिल गये। भाषा की इस परिवर्तन अवधि में अंग्रेजी पढ़ने का भी गढ़वाल में अधिकाधिक प्रचलन आरम्भ हुआ और मैदानी जुलाहों व अन्य सौदागरों के आगमन से भी गढ़वाली भाषा का रूपान्तर होता चला गया। शहरू गढ़वाल आज वस्तुत: इस दिशा में पूर्णतया मैदानी बन गया है और आज का गढ़वाली 'बिसरी गौं' के बदले 'भूलि गौं', 'डेरा' के लिए 'घर' 'कूड़ा' के लिए 'मकान' 'वस्त' के लिए 'चीज़' और 'औषध' के लिए 'दवाई' बोलना रुचिकर मानता है।

गढ़वाली वर्णमाला के प्राचीन नाम भी आज के नामों से सर्वथा भिन्न होते थे और उनको क, का, कि, की, कु, कू, के, कै, को, कौ, कं, कः के बदले बिजगनी क, कन्दन का, बैमति की, दैणे की, उर्तालि कु, बड्डुरे कू, एकलग के, द्वीलग कै, लगन्या को, दुलगन्या कौ, सिर बिन्दु कं, दुबास बिन्दु कः कहकर ही शिक्षार्थी बालक रटा करते थे। गढ़वाली वर्णमाला में संयुक्ताक्षरों के

साथ 'ल़' भी एक अक्षर है जिसका उचारण जीभ के अग्र भाग को उपरले दाँतों की जड़ों पर लगाकर 'ल' कहने से होता है। इस अक्षर का गढ़वाली भाषा में बहुधा प्रयोग होता है जैसे 'काल़' (काल) 'ताल़' (तालाब) 'गाल़' (गालियां) 'जाल़' (जाल) 'फाल़' (छलांग) बाल (बाल) 'लाल़' (राल) 'साल़' (गौशाला या साल़ की लकड़ी) इत्यादि।

शब्दों के परिवर्तित नामों के साथ गढ़वाली बोली में ध्वनि का उतार-चढ़ाव भी उसे वाह्य लोगों के लिए कठिनतर बना देता है और इसलिए वर्षों तक गढ़वाल में रहकर भी कोई वाह्य व्यक्ति उसे यथारूप नहीं सीख पाता। ध्वनि का यह उतार-चढ़ाव गढ़वाल के विभिन्न भागों में प्राय: अलग-अलग होता है और स्थानों की दूरी के साथ ही उसका अन्तर भी बढ़ता जाता है। टिहरी के रैका रमोली में बोला जाने वाला एक शब्द पट्टी बूंगी-पैनों' के लोग ठीक तरह नही बोल पाते और इसी प्रकार गंगोत्री की ओर से आने वाले फेस्वालों का उच्चारण पौड़ी के लोगों के सामने हास्यास्पद होता है।

किसी की याद में विकल हो जाने के लिए गढ़वाल में 'खुद लगना' कहा जाता है और इसी प्रकार समवेदना का अत्यन्त कोमल रूप 'कल़कलो' के नाम से पुकारा जाता है। इसी प्रकार के अनेक शब्दों में मानव हृदय की बारीक से बारीक भावुकता को गढ़वाली शब्दों द्वारा स्पर्श किया गया है और मैदानी भाषा में उनकी समानता वाले शब्द नहीं मिलते। अकेले शरारती या नटखट शब्द के सूक्ष्मसे सूक्ष्म भाव परिवर्तन को व्यक्त करने के लिए गढ़वाली बोली में उसे उतराल्यूं, चड़बाल्यूं, बिगच्यूं, खेचयूं, व पतग्यूं के पांच अलग अलग शब्दों में कहा जाता है!

गढ़वाली बोली की अपनी ही लोकोक्तियां भी होती हैं जिन्हें 'आणां' कहा जाता है और उनमें मैदानी लोकोक्तियों की ही तरह भाव को परिमार्जित रूप में व्यक्त किया होता है। मैदानों में कही जाने वाली 'जान न पहिचान बड़ी बीबी सलाम' का शब्दानुवाद गढ़वाली बोली में 'अपणों न विराणों भक्क अंग्वाल़' में हुआ है। ध्यानपूर्वक देखने से पता लगता है कि इस का भाव मैदानी बोली में उतना स्पष्ट नहीं है जितना गढ़वाली 'भक्क-अंग्वाल' में हुआ है। इसी प्रकार अनेक अवसर ऐसे आते हैं जब गढ़वाली भाषा का महत्व स्वीकार करना पड़ता है।

कविता के लिए गढ़वाली भाषा पर्याप्त धनी है और लालित्यपूर्ण भी। गढ़वाली कविताओं के द्वारा जहां वीर रस से मनुष्य को अन्याय के विरुद्ध

अपना बलिदान करने के लिए छलांगें मारते हुए उद्यत किया जा सकता है वहां मातृ-प्रेम में बिलखती हुई नव विवाहिता वधू की वात्सल्य रस पूर्ण 'गुन-गुन' से पाषाण हृदय को भी द्रवित किया जा सकता है। पांडव नाच में 'दैत्य संहार' का रौद्ररस मनुष्य की धमनियों में अचिन्त्य क्रांति की उत्पत्ति कर सकता है जब कि पहाड़ की चोटियां या पाषाणों पर घास काटती हुई गढ़-वाली युवतियों के सुरीले और करुणारसपूर्ण गीतों से बहुधा सुनने वाले बटोही की आंखें छलक उठती हैं। इसी प्रकार गढ़वाली शृंगार रस से मानव हृदय तंत्र के तारों को छूकर उन्मादित किया जा सकता है और हास्य आदि रसों से भी प्रयोजनीय भाव उत्पन्न हो सकते हैं।

साधारण बोलचाल में भी गढ़वाली भाषा के द्वारा गूढ़ से गूढ़ विचार-धारा को व्यक्त किया जा सकता है बल्कि प्रायः कम से कम शब्दों में इसके द्वारा मन्तव्य हल हो जाता है। मैदानी बोली में 'वहाँ किस लिए गये थे' को गढ़वाल में केवल 'बख केकु गै छा' में ही कहा जा सकता है और इसी प्रकार 'अधिक भोजन करने से आलस्य आता है' का गढ़वाली रूपांतर 'बिंडी खांणन अलगास औंद' होता है।

गढ़वाली भाषा का शब्दकोष बनाने में श्री बलदेव प्रसाद नौटियाल एम. ए. ने पर्याप्त परिश्रम किया था और वह इस दिशा में काफी सफलता भी प्राप्त कर चुके थे, किन्तु भारत विभाजन के समय लाहौर से कठिनता पूर्वक निकल सकने से उनकी समस्त पुस्तकीय सामग्री (हस्तलिखित अथवा प्रकाशित) वहीं नष्ट हो गई। उन्होंने गढ़वाली भाषा के गम्भीर अन्वेषण से संसार की अन्य भाषाओं के पर्यायवाची शब्दों का भी उक्त कोष में विवरण के साथ संकलन किया था। इसी प्रकार कोटेश्वर पट्टी कटूलस्यूं के श्री रामप्रसाद अध्यापक के द्वारा लिखित 'रामेश्वरी गढ़वाली व्याकरण' में भी गढ़वाली भाषा को परिमार्जित ढंग से रखने के लिए प्रयत्न किया गया है। तात्पर्य यह है कि गढ़-वाली मस्तिष्क अपनी भाषा की सजीवता को बनाये रखने व बढ़ाने की ओर प्रयत्नशील है और इसलिए उसकी उन्नति और विकास का समय आ रहा है।

गढ़वाल की राजभाषा भी सदैव हिन्दी रही है और इसलिए वहां के समस्त सरकारी कार्यालयों में देवनागरी लिपि में ही सब काम होता है। वहां की प्रारम्भिक शिक्षा का माध्यम भी हिंदी ही है और इसलिये 'हिंदी सुलेख' में गढ़वाली लोग एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। गढ़वाल की घसीट लिखावट अलबत्ता बाह्य लोगों के लिये पढ़नी कठिन होती है क्योंकि सरकारी कार्यालयों में अति शीघ्रता के साथ उसे लिखा जाता है।

मृत्यु—गढ़वाल में मोक्ष की कामना ही मृत्यु के पश्चात् का धार्मिक लक्ष्य होता है और एतदर्थ मृतक के परिवार को उसके अन्त्येष्टी संस्कार के एक बृहद वैधानिक जाल से गुजरना पड़ता है। यहां तक कि बिना औलाद वाले कई लोग उक्त आकांक्षा से अपने जीते जी 'वृषभ-स्वर्ग' का कार्य सम्पन्न कर देते हैं और कई समृद्ध परिवार के लोग साठ वर्ष की आयु या इससे भी पूर्व सन्यास लेकर उत्तर काशी में निवास करने लगते हैं। मोक्ष की कामना में गार्हस्थ्य जीवन से छुट्टी लेने और तदनुसार वैराग्य लेकर अनेक पुरुष व स्त्रियों का गेरुवा वस्त्र धारण कर लेना तो गढ़वाल में प्रचलित है ही और इसी आशय से गंगा तीर और धार्मिक मठों में साधुओं का बाहुल्य पाया जाता है।

जीवन की अन्तिम घड़ियों में मृतक को गोबर से पुती हुई शुद्ध भूमि शैया पर उत्तर के सिरहाने से लिटा दिया जाता है और यदि सम्भव हो सके तो उसके हाथ से गोदान व अन्नदान भी करा लिया जाता है। उस समय गीता के सर्व-क्लेश-हारी श्लोकों की ध्वनि उसके कानों में डालकर उससे कहा जाता है कि भगवान का स्मरण करे। परिवारियों द्वारा मृतक की सद्गति के लिये शास्त्रीय कर्मों का यहीं से श्रीगणेश हो जाता है। अंतिम सांस निकल जाने पर उसे नहलाया जाता है और उसके कंठ, ग्रीवा और ललाट पर चन्दन का लेप कर उसके मुख में गंगाजल और स्वर्ण भी रखा जाता है।

दस ग्यारह वर्ष तक की आयु वाले लड़के-लड़कियों को जिनका यज्ञोपवीत या विवाह संस्कार न हुआ हो, गांव के निकट ही किसी नदी तट पर अथवा श्मशान भूमि में गाड़ दिया जाता है; क्योंकि इतनी छोटी सी आयु में उनके हाथों किसी नैतिक या आध्यात्मिक नियम का उल्लंघन न हुआ होगा, यह मानकर उनकी मोक्ष कामना या सद्गति के लिये साधारण से दान आदि के अतिरिक्त कुछ नहीं करना पड़ता। उससे अधिक आयु वाले स्त्री-पुरुषों को (छूत के रोगियों के अतिरिक्त) सदैव जलाया ही जाता है। गंगा नदी के तटवर्ती या दस-पन्द्रह मील दूर तक के लोग प्राय: मृतव्यक्ति की लाश को गंगातट पर ही जलाते और उसकी राख को गंगा की धारा में प्रवाहित करने का लाभ उठाते हैं।

मैदानों की ही तरह गढ़वाल में भी मृतक की लाश को बांस या लम्बे लम्बे डंडों पर लाल कफन से बांधकर सर्व प्रथम अपने लड़कों या भाइयों के द्वारा कन्धों पर उठाया जाता है। उस समय घर पर, आधे रास्ते में तथा श्मशान भूमि में डालने के लिए उलटी चक्की द्वारा पीसे गये जौ के तीन पिंड

तो बनाने ही पड़ते हैं, साथ ही एक छोटी सी टोकरी पर कुछ धान लेकर भी एक व्यक्ति को चलना पड़ता है, जो उन्हें रास्ते में स्थान-स्थान पर एक-एक मुट्ठी डालता चलता है। मृतक की लाश कन्धों पर इस प्रकार उठाई जाती है कि उसका सिर श्मशान की ओर हो और उस समय समस्त परिवार मृतक के लिए एक विचित्र ध्वनि से रोता है। नौजवान पति या पुत्र की मृत्यु होने की स्थिति में यह समय अत्यन्त हृदय-विदारक होता है। घर से चलने के पश्चात् आधे रास्ते में मृतक का सिर घर की ओर बदल जाता है और वहां पर जौ का एक पिंड भी छोड़ा जाता है।

श्मशान पर पहुँच कर चिता के आवश्यक निरूपण तक मृतक की लाश को कन्धों ही पर उठा रखने का गढ़वाल में चलन है और उसके पश्चात् पुरुष होने की स्थिति में उल्टा और स्त्री होने की स्थिति में सीधा चिता पर इस प्रकार लिटा दिया जाता है कि शिर और पैरों के अतिरिक्त उसके शरीर का कोई भाग नंगा न रहे। यह कार्य मृतक की अन्त्येष्ठी क्रिया करने वाले पुत्र या भाई द्वारा सम्पादित होता है। मृतक को चिता की लकड़ियों से पूर्णतया ढक कर घी और होम की सामग्री भी चिता में डाल दी जाती है और फिर उसके पश्चात् मंत्रों के साथ उस पिता या भाई को अपने हाथ पीछे को तरफ करके जलती हुई मशाल से चिता को प्रज्वलित करना पड़ता है। देखते-देखते ही मृतक व्यक्ति की आशा तृष्णाओं को अपनी हरी पीली लपकों के साथ हवा में विलीन कर देने वाली चिता, धांय-धांय करती हुई तनिक देर में उसके सिर और पेट के भाग के अतिरिक्त समस्त शरीर को निःशेष कर देती है। उस समय मृतक की कपाल क्रिया का विधान होता है। अन्त्येष्ठी क्रिया करने वाला पुत्र या भाई, पीछे की ओर अपने हाथ पर पकड़े हुए बांस से उस अधजले सिर पर मारता और इस प्रकार वह फूट जाता है। हिन्दू परम्परा के अनुसार मृतक की अन्तिम सांस का उसके ब्रह्मांड का निराकरण होने के पश्चात् ही उसकी उर्ध्वमुखी यात्रा का मार्ग आरम्भ होता है। उसी समय मृतक की क्रिया करने वाले पुत्र या भाई का मुण्डन भी आरम्भ कर दिया जाता है।

चिता शान्त होने पर पानी से बुझाई जाती है और मृतक का अवशेष नदी की धारा में प्रवाहित कर दिया जाता है। उस समय साथ में आए हुए सब लोग भी स्नान करते और तदनुसार सिर पर एक सफेद कपड़े की चीर लपेटे तथा लंगोटी धारण किये हुए क्रियाकर्मी को एक चादर उढ़ाकर घर को प्रस्थान करते हैं। गाँव के निकट आकर मार्ग में कांटे की एक टहनी को पत्थर से दाबा जाता है जिसके ऊपर पाँव रख कर ही सब लोग घर की ओर आगे बढ़ते और मकान के निकट रखे हुए गोमूत्र की आचमनि लेकर

और उपले की राख का तिलक लगाकर घर में प्रवेश करते हैं। उस रात को समस्त परिवार के लोग मृतक की याद और उसकी प्रतिष्ठा स्वरूप निराहार रहते हैं। क्रिया कर्मी के लिए उसके पश्चात् केवल एक बार और बिना नमक का भोजन बनता है और अन्य परिवारियों पर भी तेल अथवा सुगन्धित पदार्थों का भोजन न करने का प्रतिबन्ध लग जाता है। क्रियाकर्मी उस दिन से घास के बिछौने पर ठीक उसी स्थान पर सुलाया जाता है जहाँ मृत व्यक्ति की अन्तिम सांस निकली हो और दो बार स्नान करने का नियम उस पर लागू रहता है।

तीसरे दिन निकटस्थ नदी या खोह में छोटे छोटे दो पत्थरों के ऊपर पानी से भरा हुआ एक कसोरा इस प्रकार रखा जाता है कि उसका पानी नीचे रखे हुए कुश के बने हुए प्रेत पर टपकता रहे। गढ़वाल में इसे घड़ा रखना कहते हैं और इस परिपाटी में चिता के द्वारा जली हुई प्रेतात्मा को शान्त करने की कल्पना निहित होती है। पाँच, सात या नौ दिन तक यह क्रिया चालू रहती है और क्रियाकर्मी का यह कर्तव्य होता है कि वह सुबह शाम स्नान कर उस कसोरे में नया जल डाल आए। इसी अवधि में समस्त परिवार तथा गोत्र के पुरुष सदस्यों के सिर भी मूंडे जाते और उनके द्वारा सफेद कपड़े की चीरें सिर पर बाँध कर उलटी टोपियाँ पहिनी जाती हैं। साधन सम्पन्न लोग इन दिनों मृतक के घर पर गरुड़ पुराण का भी पाठ कराते और तदनुसार प्रेतात्मा की शान्ति की कामना करते हैं।

प्राय: ९ वें दिन घड़ा फोड़ दिया जाता है और उस रोज परिवार के सदस्यों पर से तेल व सुगन्धित पदार्थ न खाने का प्रतिबन्ध ढीला कर दिया जाता है। दसवें दिन से प्रेत कर्म का शास्त्रीय उपकरण आरम्भ होता है और घड़े के ही स्थान पर कर्मकाण्ड की विधि के अनुसार प्रेतात्मा को यमराज के न्यायालय तक पहुंचाने के लिए विभिन्न काल्पनिक पहाड़ों, नदियों और कण्टकाकीर्ण मार्गों से पार कराया जाता है। बार-बार चावलों के पिंड बना कर छोड़े जाते हैं और इस प्रकार यह मान लिया जाता है कि प्रेतात्मा को इसके द्वारा भूख-प्यास तथा थकावट से शान्ति मिल रही है। ग्यारहवें दिन गौ, अन्न, वस्त्र, साज-सज्जा भी प्रेत के निमित अचार्जी (कटुड़िया) को दिए जाते हैं। बारहवें दिन के कर्म के द्वारा प्रेतात्मा को बैतरणी के पार होकर यमपुरी में प्रवेश हुआ मान लिया जाता है और इसके लिए उस दिन भी गौ, वस्त्र और सेज आदि का दान किया जाता है। तेरहवें दिन मुंडे हुए सब लोग एक साथ स्नान कर तथा यज्ञोपवीत धारण करते और तिलपात्र करने के पश्चात् धुली हुई अथवा शुद्ध टोपियाँ धारण करते हैं। इस दिन को

'तेरहवीं' कहा जाता है और उस दिन से क्रियाकर्मी को भी पूरे वस्त्रों का उपयोग करने और दोनों बार नमक का भोजन करने की छूट हो जाती है। अब मृतक का परिवार धीरे-धीरे अपनी वास्तविक स्थिति पर आने लगता है।

पूरे एक मास में मृतक का मासिक श्राद्ध किया जाता है। उस दिन के लिए कुल पुरोहित गंगातट से पिछले हाथों से उठा कर एक छोटा सा गोल पत्थर गंगाजल की एक हांडी में लाकर रखता है। उस दिन उस पत्थर को शास्त्रीय रीति से पूजा आदि के द्वारा पित्र बनाया जाता है और गाँव के एक ओर बने हुए पित्र-घर में अन्य पित्रों के साथ स्थापित कर दिया जाता है। उसके पूरे ग्यारह माह तक मृतक के समस्त गोत में संक्रान्ति को नौबत नहीं बजती और ब्याह आदि के शुभ कार्य तथा त्यौहार भी नहीं मनाये जाते। प्रति मास को आने वाली निधन-तिथि को क्रियाकर्मी का सिर मुंडा कर कुम्भ दान होता है।

एक वर्षके पश्चात् मृतक का वार्षिक श्राद्ध किया जाता है और उस दिन पुनः गोदान, वस्त्र, सेज व बर्तनों का दान किया जाता और यथा शक्ति अधिक से अधिक ब्राह्मणों और अतिथियों को भोजन कराकर मृतात्मा की सद्गति मान ली जाती है और इस प्रकार मृतक को भुला दिया जाता है।

असौज में आने वाले पित्री-पक्ष में विभिन्न तिथियों पर अन्न आदि के दान और ब्राह्मणों को भोजनादि करा कर प्रतिवर्ष दिवंगत आत्माओं को याद करने का क्रम सदैव चालू रहता है।

चरित्र—गढ़वाली राजनीति के संकुचित धरातल में वहाँ के चरित्र की परिभाषा सर्वांशतः बदल गई है, यह प्रायः सभी अनुभव करते हैं। फिरंगियों के आगमन से पूर्व भी गढ़वाल के इतिहास ने राज्य परिवर्तन कई बार देखे, बल्कि पूरे एक युग के गोरखा अधिपत्य का भी गढ़वाली चरित्र पर विशेष प्रभाव न पड़ा। किन्तु पिछली गोरा सरकार मानों एकेक गढ़वाली जाति से कह गई हो कि उन्हें अपने अस्तित्व के लिए अन्य सभी को अपना प्रतिद्वन्दी मानना चाहिए। फलतः गढ़वाल आज संघर्ष का एक क्षेत्र बना हुआ है और गढ़वालियों का आदर्श चरित्र भी रफूचक्कर हो गया।

जाति विभाजन का भी इस प्रान्त के चारित्रिक क्षेत्र में विशेष डर नहीं था, क्योंकि समस्त जाति के सम्मिलित प्रयत्न से होने वाले कार्य मनुष्य को अमर्यादित नहीं होने देते। किन्तु गढ़वाल में होने वाले संघर्षों का बाहरी रूप जातीय होकर वास्तव में व्यक्तिगत रहा है और इसके कारण अनेक

ऐसे लोग अपनी-अपनी जातियों के मुखिया बन गये जिनमें अपने अनुगामियों के पथ प्रदर्शन की योग्यता नहीं थी और ना ही चरित्र के अमूल्य आभूषण का ज्ञान था। ऐसी स्थिति में गढ़वाल के उज्वल चरित्र की दीवालों का धराशाई होना स्वभाविक होगया।

गढ़वाली, वीर और साहसी होता है और उसके इसी गुण के कारण आजकी दुनिया प्रायः उसे जानती है। किन्तु जबसे उसकी प्रवृतियाँ राजनीति की ओर आकृष्ट हुई हैं तभी से उसकी वीरता का मान घटने लगा है और वह घटते-घटते क्या हो जायगा यह तो भविष्य ही बता सकता है। सात समुद्र पार जाकर शत्रु से लोहा लेने और गढ़वाल को 'वीरभूमि' सिद्ध करने वाले नायक (तत्पश्चात सूबेदार) दरवान सिंह और गोबर सिंह को भी गढ़वाल ने ही पैदा किया। समस्त भारतवर्ष को अपना परिवार मानने और इसके सैद्धान्तिक पृष्टपोषण में अंग्रेज अफसरों की आज्ञा को, जान की बाजी लगाकर, ठोकर मारने वाले हवल्दार चन्द्रसिंह भी गढ़वाल की कोख से उत्पन्न हुए और इसी प्रकार आजाद हिन्द सेना के असंख्य गढ़वाली सैनिक भी इसी वीर प्रसवा भूमि के लाडले थे। किन्तु आजकी संकीर्ण राजनीति में पला हुआ एक गढ़वाली वीर अपनी खुली आँखों के सामने अपने सगे भाई पर होने वाले अत्याचार की चरम सीमा को देख ही नहीं सकता वल्कि उसे देख कर प्रसन्नता का अनुभव करता है; किसी विधवा अथवा अनाथ बच्चों की करुणाजनक स्थिति पर खिल्लियाँ उड़ा सकता है और धर्म की खुली हानि देखकर भी उसके फड़फड़ा उठने की बारी नहीं आती। कुछ लोग अलबत्ता अब तक अपने उक्त आदर्श पर दृढ़ हैं किन्तु उनकी संख्या अति न्यून होने के कारण प्रभावोत्पादक नहीं है।

गढ़वाली कुशाग्र बुद्धि होता है और मेरी मान्यता है कि अन्य पर्वतीय स्थानों की तुलना में उसकी मास्तिष्क्य शक्ति अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है। किन्तु वातावरण की प्रतिकूलता, उचित पथप्रदर्शन का अभाव तथा जीवन की आवश्यकताओं की अप्राप्यता में उसकी बौद्धिक शक्ति कुचल कर विकृत होगई है और फलतः विकास के बदले विनाश की ओर उसका आकर्षण होगया है। उसे चिन्ता नहीं कि उसके हाथों होने वाले अनेक काम उसके चारित्रिक धरातल को गिरा रहे हैं या मानवीय बुद्धि के उस दुरुपयोग का अन्य लोगों पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है। उसे तो अपने लाभ के धरातल का निर्माण करना है या फिर अपनी हठ की पूर्ति का प्रयत्न। अपने मार्ग में अड़ने वाले या निकृष्ट कर्मों का विरोध करने वाले लोगों को वह अपना शत्रु मानने लगता है और सर्वथा अमर्यादित होकर बुद्धि का

दिवाला दे डालता है। गढ़वाली राजनीति के अन्तरगत अपने साम्प्रदायिक आर्थिक तथा राजनीतिक शत्रुओं को नीचा दिखाने अथवा उन्हें हानि पहुँचाने के लिए अपने दैनिक जीवन की अलग-अलग परिस्थितियों में वह अवसर की टटोल करता रहता है और उसकी प्राप्ति पर पाशविक तथा घृणास्पद कृत्य तक करने में नहीं चूकता। बल्कि यदि ऐसे शत्रुओं की पराजय में उसका अपना भी कोई अहित होता हो तो उसे वह शान्तिपूर्वक सहन कर सकता है। इस पर भी गढ़वाल में यथार्थ बुद्धिमान लोग हैं जिन्हें वहाँ की संकुचित राजनीति से वास्ता नहीं है।

गढ़वाली आत्म सम्मानी भी होता है और स्वाभिमानी भी। किसी भी प्रकार अपमानित होने की स्थिति में वह महान वैभव को भी ठोकर मार सकता है। किन्तु आज की गढ़वाली राजनीति ने उसके इस उच्च आदर्श को भी क्षीणकाय बना दिया है और इसलिए परिस्थित्यानुसार अब वह अपने इस स्वाभाव-सिद्ध गुण का देख-देख कर प्रयोग करता और मन में उठने वाले वेग को तोड़ता-मरोड़ता रहता है। बल्कि अपने से छोटे या समानता वाले व्यक्ति के सम्मुख उसका यह गुण अभिमान में बदल जाता है और इससे जो अनर्थ हो सकते हैं वह स्पष्ट ही हैं।

उदारता में गढ़वाल अपना सानी नहीं रखता और अपने सामने आने वाली प्रत्येक घटना को उसके विभिन्न दृष्टिकोणों से देखकर सदैव उदारता पर ही अपना झुकाव रखता है। इसी कारण वह सहानुभूतिपूर्ण और दानी भी होता है और अनेक रुकावटें आने पर भी उसमें अहिंसा और क्षमाशीलता बनी रहती है। वह अपने निवाले तक को बाँटने के लिए प्रस्तुत है और अपने ऊपर होने वाले आघात पर क्षमादान दे सकता है। किन्तु अब परिस्थितियों के परिवर्तन से उसकी उदारता का धरातल संकीर्ण हो गया है और अपने बीवी-बच्चों के अतिरिक्त वह किसी को अपनी उदारता का पात्र नहीं मानता। बल्कि अपने गाँव तथा समीपवर्ती क्षेत्रों में बहुधा, इसके सर्वथा विरुद्ध उसे, विद्रोही प्रवृतिपूर्ण, प्रतिद्वन्दी और क्रोधी पाया जाता है और उभय पक्ष की निन्दा करने तथा उनकी त्रुटियों की ढूँढ करने में अपनी आत्मा का हनन नहीं मानता।

ईमानदारी और स्वामि भक्ति की गढ़वाली चरित्र में पराकाष्ठा है और उसके इस गुण से भी दुनिया उसे जानती है। अपना सर्वस्व खोकर भी मालिक की रक्षा करना अकेला गढ़वाल ही जानता है और 'पर द्रव्येषु लोष्टवत्' की लोकोक्ति के अनुसार उसके आचरण की सीमाएँ इसी में खींची

गई हैं किन्तु जीवन यापन के साधनों की न्यूनता के कारण वहाँ के समाज में कुछ समय से ऐसी विचारधारा का प्रवाह हो गया है कि किसी भी प्रकार रुपये कमाने वाले व्यक्ति का, मैदानों की ही तरह, वहाँ भी आदर होने लगा है। फलतः कई लोगों ने अपनी कमाई के साधनों को खुले रूप में ठगी का सहारा देकर धन एकत्रित करना आरम्भ कर दिया है और इस प्रकार शुद्धाचरण से आजीविका प्राप्त करने वाले लोग उनकी तुलना में हार गये हैं।

न्याय प्रियता गढ़वाली स्वभाव की अपनी चीज़ है। वह अपने लिए न्याय तो चाहता ही है किन्तु दूसरों को अपनी ओर से न्याय देने में उसे कदापि संकोच नहीं होता। अपना अहित हो जाने पर भी वह दूसरे के न्याय का रास्ता खुला छोड़ देता है और इस प्रकार समस्त जीवधारियों के लिए न्याय की समानता स्वीकार करता है। किन्तु गढ़वाली राजनीति में पड़कर अब वहाँ के न्याय की परिभाषा 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' के सदृश हो गई है। आज गढ़वाल के गाँवों में वहाँ के धनियों और उच्च पदाधिकारियों का अस्तित्व वहाँ की साधारण जनता के लिए भारस्वरूप हो गया है क्योंकि गाँव के पानी, सम्मिलित भूमि और यत्र-तत्र रास्तों पर उन्हीं का प्रभुत्व हो जाता है और उनकी उपस्थिति में धनहीन ग्रामीणों की कहीं सुनवाई भी नहीं होती। यहाँ तक कि सरकारी दफ्तरों में गढ़वाल के अन्दर रहने वाले लोगों से ही वहाँ की जनता घबराती है। फिर भी गढ़वाल में न्यायप्रिय लोगों की कमी नहीं है।

गढ़वाली सच्चा और स्पष्टवादी होता है यह उसकी वीरता के अनुरूप उसकी एक विशेषता है और कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी सच बोल देना उसका स्वभाव है। गढ़वाल में ऐसी कई घटनाएं प्रायः होती रहती हैं जिनमें अपने हित-अहित की चिन्ता किए बिना ही लोग सच बोलकर झगड़े मोल लेते हैं किन्तु अपने इस सच्चरित्र से च्युत होना नहीं चाहते। किन्तु आज इस दिशा में भी गढ़वाली स्वभाव काफी बदल चुका है और सत्य-वादियों की पर्याप्त न्यूनता होती जा रही है। गाँवों में सम्पन्न व्यक्तियों के द्वारा यदि किसी गरीब की हत्या भी हो जाय तो उसे प्रकट कर सम्पन्न व्यक्ति के प्रतिकूल जाना कोई पसन्द नहीं करता। इसलिए गढ़वाल के इस स्वभाव सिद्ध गुण की जो गति हो सकती है वह स्पष्ट है।

गढ़वाल का आचार अलबत्ता ऐसी वस्तु है जो यहाँ की राजनीति की सीमा में आकर नष्ट न हो सका यद्यपि दूसरी दिशाओं से उस पर भी आक्रमण हुए और होते जा रहे हैं। वह बिना मुँह धोये सुबह की चाय

पीने में भी आचार की सीमाओं का उल्लंघन मानता है। आज के परिवर्तित युग में भी कपड़े उतार कर कच्चा भोजन पाता है और इन्द्रियदमन का जाज्वल्यमान उदाहरण है। वह भीख माँगना निषिद्ध मानता है और उदर-पूर्ति साधन को निःशेष होने पर मजूरी करके अपना या अपने परिवार का पालन-पोषण करना ठीक समझता है। वह नम्र और मिष्टभाषी होता है तथा अपने बड़ों की प्रतिष्ठा का उसे सदैव ध्यान रहता है। चलते-फिरते, उठते-बैठते तथा खाते-पीते वह आचार के नियमों से बँधा होता है।

गढ़वाली स्त्रियों के चरित्र पर भी गढ़वाली राजनीति का विशेष असर नहीं पड़ा और इसलिए उनकी स्वाभाव सिद्ध वीरता, उदारता, सौजन्य आदि अब तक ज्यों के त्यों हैं। अशिक्षा के कारण अलबत्ता उनका सरल बुद्धि होना स्वाभाविक है और इसलिए सौंदर्य प्रियता के वर्तमान झंझावत में उनके स्वभाव में असहिष्णुता उत्पन्न हुई है। फिर भी गढ़वाली चरित्र एक उपमेय चरित्र है।

गढ़वाली संकुचित राजनीति की सीमाओं के बाहर रहने वाले ईसाइयों व मुसलमानों के चरित्र पर भी इसका प्रभाव न पड़ा और लगातार अब तक वे लोग गढ़वाली प्रकृति-प्रदत्त गुणों को यथापूर्व धारण किये हुए हैं यद्यपि वहाँ की कई बातों का उनमें पहिले से ही अभाव है।

★

व्रत, त्यौहार और मेले

व्रत—यों तो मनुष्य के मानसिक तथा आध्यात्मिक विकास के लिए ही हिन्दू समाज के अन्तर्गत व्रतों की सृष्टि हुई है और किसी भी व्रत के धार्मिक मन्तव्य के साथ साथ उसके द्वारा होने वाली दैहिक शुद्धि से मानवीय जगत के कल्याण की मार्मिक कामना की गई है तथापि कुछेक व्रतों का इस दिशा में विशेष महत्व होता है। भाद्रपद में उष्ण ऋतु का उतार आरम्भ होता है और फाल्गुन में चढ़ाव। इन दोनों ही अवसरों पर आयुर्वैदिक सिद्धान्तों के अनुसार प्रत्येक प्राणी को अपने शरीर में नये रक्त के निर्माण के लिए अपने उदर क्रम की विशुद्धता वांछनीय है। स्वभावत: इसलिए हिन्दू समाज के प्रवर्तकों को उस अवधि के अन्तर्गत आने वाले त्यौहारों को व्रत का रूप देना पड़ा है और जन्माष्टमी तथा शिवरात्री आज व्रत के रूप में मनाई जाती हैं। गढ़वाल में इन्हीं दो व्रतों का सर्वाधिक प्रचार है और बच्चों से लेकर बड़े बूढ़ों तक सभी स्त्री-पुरुष उत्साहपूर्वक इन व्रतों की प्रतीक्षा करते रहते हैं।

समस्त गढ़वाल जन्माष्टमी और शिवरात्रि के व्रत की एक दिन पूर्व 'दद्यण' से तैयारियां करता है। उस दिन शाम को अच्छे अच्छे पकवान बनाए जाते और बड़े हर्षोल्लास के साथ दूसरे दिन के अरुणोदय की प्रतीक्षा की जाती है। सुबह होते ही सब लोग अनिवार्यत: नाहते हैं और घर बाहर की शुद्धता के पश्चात अच्छे अच्छे और रंग बिरंगे वस्त्रों से सुसज्जित होकर निकटस्थ मन्दिरों, शिवालयों या देवस्थानों पर मेलों के रूप में एकत्रित होते हैं। उस समस्त दिन वे निराहार रहते और इस पर भी एक-एक व्यक्ति कितना प्रसन्न चित्त, स्फूर्तिपूर्ण और तेजमय रहा करता है यह देखते ही बनता है। फागुन के व्रत (शिवरात्री) को गढ़वाल के लोग प्राय: ऊँची ऊँची पहाड़ियों पर चढ़ कर दूर दूर तक प्रकृति के सौंदर्य का आनन्द लेते हैं। शाम को घर लौटकर फलहार (चुवा व ओगल की रोटियां तथा कचालू व तैडू का साग) खाते और उसके पश्चात विशेषत: जन्माष्टमी को भगवान कृष्ण की डोली के साथ गायनादि से जागरण करते हैं।

गढ़वाल के अन्य व्रत अधिकांशतः महिला समाज के लिये होते हैं और अनेक व्रतों को यथारूप जीवित रखने का श्रेय भी उन्हीं को है। सुहागिन स्त्रियां बहुधा पुत्र-प्राप्ति अथवा अपने पति या पुत्रों की दीर्घायु की कामना से व्रत रखती हैं किन्तु व्रतों की अधिकांश संख्या का उत्तरदायित्व रखने वाली विधवाएं, मोक्ष और सद्गति की कामना से व्रत धारण करती हैं और परोक्ष में इसका अर्थ उनके इन्द्रिय दमन और दैहिक शक्ति को क्रमशः घटाने का होता है। जिससे उनमें आत्मिक बल उत्पन्न हो और भगवान के चरणों में उनकी निष्ठा हो। एकादशी व चतुर्दशी के व्रत अधिकांशतः विधवाओं के द्वारा रखे जाते हैं और कुछ एक ज्योतिषी पंडित व वृद्ध लोग भी अभिष्ठ सिद्धि के लिए इन व्रतों को धारण करते हैं। गढवाल में एकादशी व्रतों को रखने वाले पुरुष व स्त्रियां पर्याप्त संख्या में हैं जबकि बहुत से ग्रामीण इलाकों में इसका प्रचार नहीं है।

सत्य नारायण का व्रत गढवाल में पुरुषों तथा स्त्रियों के द्वारा बहुधा रखा जाता है और वह भी प्रायः अभीष्ठ सिद्धि या प्रसन्नता प्रकट करने के लिये होता है। इस व्रतके लिये कोई तिथि निर्धारित नहीं होती यद्यपि पूर्णिमा व संक्रान्ति का दिन इसके लिये विशेष उपयुक्त माना जाता है। इस व्रत को रात्री के समय भगवान सत्यनारायण का पूजन और कथा भी की जाती है।

कई लोग सप्ताह के किसी दिन को भी व्रत रखते हैं किन्तु वह ग्रहों की शान्ति के लिये होता है; जैसे मंगल ग्रह की क्रूर दृष्टि को शान्त करने के लिये मंगल का व्रत और शनि की क्रूर दृष्टि के लिये शनिवार का व्रत लिया जाता है। रविवार व सोमवार के व्रत पति व पुत्र की चिरायु और शुभ-कामना के मन्तव्य को लेकर होते हैं।

व्रत धारण करने के लिए विधान भी अलग अलग होते हैं। गढ़वाल में मंगलवार के व्रत के दिन मिष्ठान्न खाया जाता है और कहीं कहीं इसका कड़ा नियंत्रण है कि व्रती मनुष्य से छूटा हुआ मिष्ठान्न पशुओं तक को नहीं खिलाया जा सकता और इस लिये उसे कहीं भूमि में गाड़ देते हैं। इसी प्रकार षटतिला एकादशी को तिलों का भोजन व तिलों का दान किया जाता है, और व्रत के दिनों बड़, पीपल तथा आम के पेड़ों की जड़ों पर पानी तो सैदव दिया ही जाता है। संक्षेप में गढ़वाली व्रत मासिक क्रमानुसार नीचे दिए जाते हैं।

१—अरुन्धति व्रत-चैत्र शुक्ला प्रतिपदा से तृतिया तक-सुहागिन स्त्रियों के द्वारा रखा जाता है और इसके द्वारा यह कामना की जाती है कि व्रती को अपने जीवन में वैधव्य का कभी दुख न पड़े।

२—राम नवमी-चैत्र शुक्ला ६-यह व्रत भी सुहागिन स्त्रियों द्वारा लिया जाता है और इसका मन्तव्य भी वैधव्य की यंत्रणा से मुक्ति पाने का ही है।

३—फलदा एकादशी-चैत्र शुक्ला ११-यह व्रत पुरुषों तथा स्त्रियों के द्वारा लिया जाता है और अपने नाम के अनुसार वह अभिष्ठ फल देने वाली होती है।

४—वरूथिनी एकादशी-वैसाख कृष्णा ११-यह व्रत भी अभिष्ठ फल की प्राप्ति के लिए रखा जाता है -

५—मोहिनी एकादशी-बैसाख शुक्ल ११-इस व्रत से पापोंका नास होना माना जाता है। इसे पुरुष और स्त्रियां धारण करती हैं।

६—अपरा एकादशी-ज्येष्ठ कृष्ण ११- इस व्रत से भीषण पापों का भी नास हो जाता है, यह माना जाता है। इसे पुरुष व स्त्रियां नहीं रखती है। इसका चलन प्रायः विधवाओं तक ही सीमित है।

७—वट सावित्री-ज्येष्ठ कृष्ण १३-यह व्रत प्रायः सुहागिन स्त्रियों द्वारा रखा जाता है और अपने पति तथा पुत्रों के दीर्घजीवन के अलावा जन्म जन्मान्तर तक वैधव्य की यंत्रणा न मिलने की उसके द्वारा कामना की जाती है। उस दिन बड़ के पेड़ की पूजा की जाती है।

८—गंगा दशहरा-ज्येष्ट शुक्ल १०-यह पर्व गंगावतरण का है और केवल पुरुषों तथा गंगा तट पर रहने वाले लोगों हो तक सीमित है। इस दिन पर गंगोत्री मन्दिर के कपाट खुलते हैं।

९—निर्जला एकादशी-ज्येष्ट शुक्ल ११-इस व्रत में दशमी की रात्री से द्वादशी की सुबह तक निराहार रहने के साथ पानी भी नहीं पिया जासकता। पुरुष और स्त्रियां इस व्रत को बड़े उत्साह के साथ धारण करते हैं और व्रत की समाप्ति पर जल पात्र, पंखे तथा छत्रियां दान करने की यथा सम्भव कोशिश की जाती है। जन्म पर्यन्त एकादशी के व्रत लेने वाले पुरुष तथा स्त्रियाँ बहुधा बुढ़ापे में इस व्रत के दिन एकादशी की शान्ति करके व्रत की कठिनाइयों से मुक्त हो जाते हैं।

१०—योगनी एकादशी-आषाढ़ कृष्ण ११-यह व्रत पुरुषों तथा स्त्रियों के द्वारा समान रूप में रखा जाता है। इसका तात्पर्य पापों के नास करने का है।

११—पद्मनाभा एकादशी-आषाढ़ शुक्ला ११-इस व्रत के सम्बन्ध में यह विश्वास किया जाता है कि वृष्टि न होने की स्थिति में यह व्रत व्यापक रूप में किया जाय तो निर्दिष्ट फल की प्राप्ति होगी।

१२—पुत्रदा एकादशी-श्रावण कृष्ण ११-यह व्रत बहुधा सुहागिन स्त्रियों

के द्वारा धारण किया जाता है जिससे उन्हें पुत्र प्राप्ति हो, या उत्पन्न संतान चिरजीवी हो।

१३—नाग पंचमी-श्रावण शुक्ल ५-यह व्रत भी प्रायः स्त्रियों के ही द्वारा धारण किया जाता है। स्त्रियां उस दिन व्रती रह कर नाग पूजा करती हैं। कहा जाता है कि इस व्रत के रखने से साँप के काटने का डर नहीं रहता।

१४—कामदा एकादशी-श्रावण शुक्ला ११-इसका भी पिछली पुत्रदा एकादशी जैसा फल माना जाता है और एकादशी के व्रती सब स्त्री पुरुष इस को लेते हैं।

१५—जन्माष्टमी-भाद्रपद कृष्ण ८-यह व्रत गढ़वाल का सार्वजनिक व्रत है। इसे सभी स्त्री पुरुष तथा बच्चे भी लेते हैं और त्यौहार के रूप में इस व्रत को मनाया जाता है।

१६—अजा एकादशी-भाद्रपद कृष्ण ११-यह व्रत खोए हुए वैभव की प्राप्ति के लिए धारण किया जाता है और सभी एकादशी के व्रती स्त्री पुरुष इसे धारण करते हैं।

१७—हरतालिका व्रत-भाद्रपद शुक्ल ३-यह स्त्रियों का व्रत है। स्त्रियां बड़े उत्साह के साथ इस व्रत को धारण करती हैं और इसकी कथा भी सुनती हैं।

१८—ऋषी पंचमी-भाद्रपद शुक्ल ५-यह व्रत प्रायः स्त्रियों के द्वारा धारण किया जाता है और इस के द्वारा पापों के मुक्ति होने की कामना की जाती है।

१९—वामन एकादशी-भाद्रपद शुक्ल ११-यह व्रत पुरुषों तथा स्त्रियों के द्वारा लिया जाता है और उस रोज वामन अवतार की पूजा होती है।

२०—अनन्त चतुर्दशी-भाद्रपद शुक्ल १४-यह व्रत कष्ट मुक्त होने के लिए लिया जाता है और स्त्री पुरुष दोनों ही उसे धारण करते हैं। इसके पश्चात् पितृपक्ष आरम्भ होता है और इस लिए भी इस व्रत का प्राधान्य होता है।

२१—इन्दिरा एकादशी-आश्वीन कृष्ण ११-यह व्रत विधवा स्त्रियों तथा पुरुषों द्वारा रखा जाता है। इसके पीछे पितरों की सदगति का लक्ष्य होता है।

२२—जीवत्पुत्रिका व्रत-आश्वीन शुक्ल ८-यह व्रत पुत्रवती स्त्रियां अपने पुत्रों के चिरजीवन की कामना से धारण करती हैं और इसे धारण करने से पुत्रशोक न होने की कल्पना की जाती है।

२३—पापांकुशा एकादशी-आश्वीन शुक्ला ११-यह व्रत पुरुषों तथा स्त्रियों के द्वारा समान रूप में लिया जाता है। इसे लेकर पापों से मुक्त होने की कल्पना होती है।

२४—करवा चतुर्थी-कार्तिक कृष्णा ४-यह व्रत केवल स्त्रियों के ही लिए होता है। दिन भर निराहार रह कर स्त्रियां इस व्रत के दिन चन्द्रमा के उदय पर अर्घ्य देती हैं और तत्पश्चात इस व्रत की कथा श्रवण करती हैं। इस व्रत के पीछे विघ्नों के नाश की कामना है।

२५—रमा एकादशी-कार्तिक कृष्ण ११-यह व्रत केवल स्त्रियों के लिए होता है और इसके द्वारा पातिव्रत धर्म के दृढ़ रहने और जन्म जन्मान्तर तक वही पति प्राप्त होने की कामना होती है। इस व्रत को तुलसी विवाह भी होता है।

२६—बैकुंठ चतुर्दशी-कार्तिक कृष्णा १४-यह व्रत पुरुषों तथा स्त्रियों के द्वारा रखा जाता है और पुत्रोत्पत्ति की कामना से अमावास्या की रात्री को श्रीनगर में कमलेश्वर के मंदिर पर रात्रीपर्यन्त हाथ पर घी का दीवा रखकर खड़ा रहने की यहाँ प्रथा है।

२७—अन्नकूट-कातिक शुक्ल प्रतिपदा-इस में गोवर्धन की पूजा की जाती है।

२८—भीष्मा एकादशी-कार्तिक शुक्ल ११-यह व्रत बाण शैय्या पर पड़े भीष्म की स्मृति स्वरूप रखा जाता है। इस एकादशी से पूर्णिमा तक के पांच दिनों को भीष्म पञ्चक कहा जाता है और स्त्रियां इन पांचों दिन प्रातः काल शीतल जल से स्नान करती हैं।

२९—मार्गशीर्ष-कृष्णा एकादशी-यह व्रत गढ़वाल में कहीं कहीं किया जाता है बल्कि बारह मासी एकादशियों का व्रत रखने वाली विधवाएँ तथा पंडित जन ही बहुधा इस व्रत को धारण करते हैं। कहा जाता है कि किसी दैत्य के संहार की स्मृति इस व्रत के द्वारा रखी गई है।

३०—मोक्षदा एकादशी-मार्गशीष ११-यह व्रत बहुधा बूढ़े पुरुष स्त्रियों और विधवाओं के द्वारा धारण किया जाता है और इसके द्वारा मोक्ष प्राप्ति की कामना की जाती है।

३१—सफला एकादशी-पौष कृष्ण ११-यह एकादशी सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है और सभी पुरुष स्त्री इसे धारण कर सकते हैं। इसके लिए पूजा व जागरण भी होता है।

३२—पुत्रदा एकादशी-पौष शुक्ल ११-यह भी श्रावण कृष्ण एकादशी की तरह प्रायः उन्हीं पुरुष स्त्रियों के द्वारा धारण किया जाता है जिन्हें पुत्र की कामना हो। पुरुषों तथा स्त्रियों के द्वारा समान रूप में यह व्रत रखा जाता है।

३३—षटतिला एकादशी-माघ कृष्ण ११-यह व्रत भी निर्जला एकादशी की ही भांति गढ़वाल में अत्यधिक मान्य है एकादशी के व्रतों की शान्ति इस व्रत को भी होती है। इस व्रत को तिल के लड्डू खाए और दान किये जाते हैं और कथा और जागरण भी होता है।

३४—अचला सप्तमी-माघ शुक्ला ७-यह व्रत गढ़वाल में पंडित जन रखा करते हैं। इस व्रत के पीछे भी पाप मुक्त होने की कामना है। यह दिन गढ़वाल में वारिष होने का दिन माना जाता है। कोई कोई लोग इसके दूसरे दिन व्रत रखते हैं।

३५—जया एकादशी—माघ शुक्ल ११-इस व्रत को पुरुष और स्त्रियाँ समान रूप में रखते हैं। इसके द्वारा वैकुण्ठ वास मिलता है यह विश्वास किया जाता है। इस व्रत को जागरण भी किया जाता है।

३६—विजया एकादशी—फाल्गुन कृष्णा ११- इस व्रत के पीछे कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने की कामना है। सभी जानकार व्रती इस व्रत को धारण करते हैं।

३७—शिवरात्री—फालगुन कृष्ण १३-यह तो गढ़वाल का प्रसिद्ध व्रत है सभी स्त्री-पुरुष और बच्चे इस व्रत को धारण करते हैं और इस दिन गढ़वाल के कई प्रसिद्ध स्थानों पर बड़े बड़े मेले भी होते हैं।

३८—आमलकी एकादशी—फालगुन शुक्ल ११-इस व्रत के पीछे कठिनाइयों से सुरक्षित रहने की कामना है। व्रत के दिन आँवले का भी कुछ उपयोग किया जाता है।

३९—पाप मोचिनी एकादशी—चैत्र कृष्णा ११-इस व्रत से पाप मुक्त होते हैं यह कल्पना की जाती है। पुरुष तथा स्त्रियाँ समान रूप में इस व्रत को धारण करते हैं।

गढ़वाल में बहुधा मठ मन्दिरों तथा तीर्थ स्थानों पर पुराणों (श्रीमद् भागवतादि) की कथाएं भी समय समय पर होती रहती हैं और अपने घरों पर भी हरिवंश पुराण या रामायणादि की कथाएं होती हैं जिनमें कथा कराने वाले यजमान अथवा कथा वाचक को व्रती रहना पड़ता है और श्रोता लोग भी बहुधा व्रत रखकर शुद्ध बने रहने का प्रयत्न करते हैं।

त्यौहार—वर्ण व्यवस्था के अनुसार ही हिन्दू समाज के अन्तर्गत त्यौहारों का भी विभाजन है। ब्राह्मणों का त्यौहार ऋषी पूर्णिमा व रक्षा बन्धन है, क्षत्रियों का दशहरा वैश्यों का दिवाली और हरिजनों का होली है। बल्कि इनके आगे पीछे व बीच में छोटे छोटे कई अन्य त्यौहार भी आते हैं। किन्तु इन त्योहारों की धार्मिक व सामाजिक मान्यता या वैज्ञानिकता के सम्बन्ध में विद्वान पंडितों के अलावा गढ़वाल में शायद ही कोई जानता है। साधारण सी गाथाओं के अलावा, जो कि प्रत्येक त्योहार के लिए प्रचिलित होती हैं, कोई भी इसकी बारीकी में नहीं जाता और जाना नहीं चाहता क्यों कि आज का मनुष्य अपनी समस्याओं में पर्याप्त उलझा होता है।

समाज को व्यवस्थित और संगठित रखने के लिए इन त्यौहारों का क्रम इस प्रकार रखा गया है कि प्रत्येक वर्ण के त्योहार सभी वर्णों के द्वारा समान रूप में मनाए जाते हैं, क्योंकि उन सभी त्योहारों में विभिन्न दृष्टिकोणों के द्वारा एक ही वर्ग की नहीं अपितु समस्त मानव समाज के कल्याण की कामना निहित है। संक्षेप में गढ़वाली त्यौहारों का वर्णन निम्न प्रकार है:—

ऋषि पूर्णिमा-श्रावण की पूर्णमासी-गढ़वाल में यह त्यौहार अधिकांशत: 'ऋषितर्पणी, के नाम से जाना जाता है। उस दिन ब्राह्मण लोग अपने यजमानों को रक्षाबन्धन करते और जनेऊ भी देते हैं और बहिनें भी भाइयों को राखिड़ी पहिनाती हैं। जानकार पंडित लोग सुबह के स्नान-ध्यान के पश्चात अपने पित्रों को तर्पण देते और पूजा तथा होम आदि करते हैं। उस रोज पूर्णमासी का व्रत भी रखते हैं और साधारण से साधारण ब्राह्मण भी स्नानादि से शुद्ध होकर चन्दन का तिलक लगा रखता है। साधारणत: रक्षा बन्धन का अर्थ यह माना जाता है कि जिस व्यक्ति को राखड़ी पहनाई जाती है उस की रक्षा होती है। किन्तु उसका ठीक अर्थ क्या है यह निम्न प्रकार है:—

आज की सौंदर्य प्रियता में राखड़ी का रूप भी बदल गया है। वास्तव में वह तीन रंगीन धागों को बनाई जाती थी। इन तीन धागों को यजमान की कलाई पर अथवा बहिन के द्वारा भाई के हाथ पर बाँधने का अर्थ उससे रक्षा के तीन कामों का संकल्प कराना होता था, जो क्रमश: गऊ की रक्षा, ब्राह्मण की रक्षा और बहिन की रक्षा है। हाथ पर, रक्षा बन्धन होने के कारण पूरे एक वर्ष तक प्रत्येक व्यक्ति, हिन्दू मर्यादा के इस संकल्प से, आबद्ध होजाता था। यदि ध्यान पूर्वक विचार किया जाय तो हिन्दुत्व के सभी नियमों का इन्हीं तीन प्रश्नों में सार विद्यमान है और इन्हीं तीन बातों के अभाव में हिन्दू संसार का ह्रास हो रहा है।

गऊ, मानव संसार के लिए कितना हितकर पशु है, इसकी व्याख्या की आवश्यकता नहीं। इसके सम्पर्क से मनुष्य को जो-जो लाभ हो सकते हैं वह भी हिन्दुमात्र के समक्ष स्पष्ट हैं और भारतीय कृषि जीवन में उसका कितना उपयोग हो सकता है, यह भी सभी जानते हैं। भगवान श्री कृष्ण के ग्वाला बनने का अर्थ ही इस बात का द्योतक है कि कलिकाल में गोधन के बिना मनुष्य का गुजारा नहीं हो सकेगा और इसलिए धार्मिक दृष्टि से गऊ की रक्षा होनी चाहिए।

ब्राह्मण की रक्षा का तात्पर्य अपनी धार्मिक श्रृंखला को दृढ़ बना रखने का हो सकता है। आज संसार में भौतिकवादी प्रवृति के कारण दुख दारिद्रय में फँसा हुआ मानव समाज त्राहि-त्राहि कर रहा है और उसका कारण यह है कि धार्मिक परम्पराएं लोप होती जा रही हैं। मनुष्य अपने ही बन्धु मनुष्य को निगल जाने की तैयारियाँ कर रहा है। क्योंकि धार्मिक परम्पराओं के द्वारा उसके लिए निर्धारित दण्ड पर मनुष्य का विश्वास नहीं रहा है। फिर भी वह समय आरहा है कि जब मनुष्य को धर्म की अथवा धर्म का प्रचार करने वाले ब्राह्मण की आवश्यकता पड़ेगी।

बहिन की रक्षा का अर्थ महिला समाज की रक्षा है बल्कि उनके भौतिक शरीर के साथ-साथ उनकी चारित्रिक रक्षा का प्रश्न भी इसी के अन्तर्गत आता है। महिला समाज की रक्षा का दृढ़ भाव मन में उत्पन्न होते ही हमारे अपने चरित्र का विकास होता है और मनुष्य यथार्थ रूप में मनुष्य बनता है। इस ओर शिथिलता आने से समाज का जो अहित हो सकता है वह अवर्णनीय है। इसलिए धार्मिक दृष्टि से स्त्री जाति की रक्षा द्वारा मनुष्य का कल्याण होता है यह हमारे समाज का विधान है।

विजया दशमी—आश्विन शुक्ल १०—यह राजपूत जाति का त्योहार है यानी क्षात्र-धर्म के आदर्शों का प्रतीक है। गढ़वाल में यह त्यौहार देवी-देवताओं के मन्दिरों पर बकरे काटने से और अनेक बड़े-बड़े मेलों के द्वारा मनाया जाता है। कहा जाता है कि भगवान रामचन्द्र जी ने इसी दिन पर लंकापति रावण के साथ संग्राम आरम्भ करके शत्रु पर विजय प्राप्त की थी। वीर राजपूत जाति इस त्यौहार को अस्त्र-शस्त्रों की पूजा करती है और इस प्रकार हिन्दुओं के राज्यकाल और वैभव का स्मरण किया जाता है।

किसी भी शुभ कार्य को आरम्भ करने के लिए विजया दशमी का दिन गढ़वाल में सर्वोत्तम दिन माना जाता है। उस दिन शादी-विवाह होते

हैं, नये बने हुए घरों में प्रवेश होता है या किसी लम्बी यात्रा का आरम्भ किया जाता है जिसका उद्देश्य आजीविका उपार्जन आदि हो।

विजया दशमी का त्यौहार वास्तव में पूरे दस दिन का होता है। आश्विन शुक्ला प्रतिपदा से आरम्भ होकर दशमी पर्यन्त यह मनाया जाता है। इस अवधि के अन्तरगत स्थान-स्थान पर गढ़वाल में रामलीला, कृष्ण लीला या ड्रामे नाटक होते हैं या अभिष्ट सिद्धि के लिए शक्ति की पूजा भी निरन्तर आठ-नौ दिन तक होती है, और दशमी के दिन यह सम्पूर्ण की जाती है। इस आठ दस-दिन की अवधि को नवरात्री कहते हैं। इन दिनों धान की फसल भी काटी जाती है और धान के घास के मोटे-मोटे रस्सों को पेड़ों पर डालकर झूल भी खेली जाती है।

दिवाली—कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी व अमावाश्या-इस त्यौहार को गढ़वाल में बग्वाल कहते हैं। शाम को पूरियाँ-पकोड़े खाने का नियम है और किसी की मृत्यु आदि के कारण दिवाली न मनाने वाले ग्रामीणों को पूरियाँ, पकोड़े बाँटने का भी। शहरू लोग या समृद्ध ग्रामीण मिठाइयाँ, खील, बतासे आदि भी दिवाली के दिन बाँटते और खाते हैं। वैश्यों का त्यौहार होकर भी सब लोग इस त्यौहार को गढ़वाल में समान रूप में मनाते हैं और गरीब से गरीब की झोंपड़ी पर भी उस दिन चहल-पहल रहती है। उस दिन तवे की रोटियाँ केवल वे ही लोग खाते हैं जिनकी 'बग्वाल' नहीं होती।

दूसरे दिन अमावश्या को दीपमाला होती है। प्रत्येक व्यक्ति यथाशक्ति अपने घर पर दीवे जलाकर उजाला रखने का प्रयत्न करता है और शहरों या निकटवर्ती गांवों में आतिशबाजी भी होती है। देहात में बहुत से नवयुवक इकट्ठे होकर और हाथों में मसालें लेकर 'भैला' खेलते और इस प्रकार इस अमावश्या की एक रात को कौतुहलपूर्ण बनाए रखते हैं। सुबह को गोधन की पूजा की जाती है और उन्हें भी दाना तथा अन्न खिलाया जाता है।

भैय्यादूज—दिवाली के तीसरे दिन यह भाई बनाने का त्यौहार है। बिना भाई के पुरुष-स्त्रियां इस दिन पर अपनी पारस्परिक मैत्री को भाई-चारे या बहिन-चारे में बदलकर उसपर सामाजिक स्वीकृति की मुहर लगा देते हैं। धर्म-भाई अपने धर्म-भाई के घर जाता वहाँ वे एक साथ भोजन करते और टोपियाँ बदलते हैं। धर्म-बहिनें भी अपनी धर्म-बहिनों के पास जाती और उनके द्वारा सम्मानित की जाती हैं। पुरुष और स्त्रियों के पारस्परिक धर्म-चारे का भी गढ़वाल में कहीं प्रचलन है किन्तु यह धीरे-धीरे कम होता जारहा है।

एगास—कार्तिक शुक्ल ११—इसको बामन एकादसी भी कहते हैं। बग्वाल की ही तरह इस त्यौहार में भी पूरी-पकोड़े खाने व बाँटने का नियम है। गाँवों में इस दिन को भी रात्रि के समय मसालों के द्वारा भैले खेले जाते हैं और इस प्रकार हर्षोल्लास मनाया जाता है। सुबह को गाय बच्छियों की पूजा आदि की जाती है।

मकर संक्रान्ति—इसे 'खिचड़्या संक्रान्ति' भी कहते हैं। उस दिन गढ़वाल का प्रत्येक घर खिचड़ी बनाता तथा खिचड़ी का दान भी करता है। ब्राह्मण लोग अपने यजमानों के घरों पर जाकर कोरे दाल चावलों तथा मँडुवे की थैलियाँ भर-भर कर लाते हैं। इस त्यौहार की अगली रात्रि को भी गढ़वाल में पूरी-पकोड़े खाने तथा बाँटने का नियम है और सुबह को गऊ बछियों को पूजने, उन्हें खिलाने पिलाने का भी।

बसन्त पंचमी—माघ शुक्ल ५—यह त्योहार संक्रांति मास के अनुसार कभी-कभी फागुन के आरम्भ में भी आता है। गढ़वाल की संस्कृति व सभ्यता के अध्याय में इसका उल्लेख हो चुका है। यह गढ़वाल का एक विशेष त्योहार होता है।

होली—फाल्गुन की पूर्णमाशी के दिन—यह त्यौहार गढ़वाल के नगरों तथा उनके सन्निकट ग्रामों तक ही बहुधा सीमित है। इसमें पिछली एकादशी (अमालकी) से सूखा रङ्ग खेलना आरम्भ होता है और चतुर्दशी को रंग की पिचकारियाँ भी चलती हैं। होलिका दहन को गढ़वाल में छरोली कहते हैं उस रोज लोग उन्मत हो जाते हैं और काले-नीले रंग के अतिरिक्त गोबर तक पानी में घोलकर लोगों पर डाल देते हैं। होली के दिनों में प्रायः गढ़वाल में स्वांग भी खेले जाते हैं और कहीं-कहीं कृष्ण लीलाएँ व झांकियां भी होती हैं। किन्तु गढ़वाल के पिछड़े इलाकों में इस त्यौहार को बहुत कम लोग जानते हैं।

विषुवतसंक्रान्ति—इस त्यौहार के सम्बन्ध में भी संस्कृति-सभ्यता के अन्तर्गत वर्णन आया है। इस दिन भी गढ़वाल में घर-घर पकौड़े पकते हैं और अन्य प्रकार से खुशियाँ मनाई जाती हैं। गढ़वाल के अधिकांश मेले इसी दिन पर होते हैं।

इन त्यौहारों के अतिरिक्त भाद्रपद पूर्णिमा से अमावस्या तक पितृ-पक्ष आता है जिसमें मृतात्माओं के नाम से उनकी मृत्यु तिथियों पर ब्राह्मणों को भोजन खिलाया जाता है और चावल, दाल इत्यादि भी दिये जाते हैं। गढ़वाल में उन्हें कनागत कहते हैं। पित्रों को चढ़ाया जाने वाला अन्न, पत्तों

के दोनों (पुड़खों) पर रखकर संकल्पित किया जाता है और उसके पश्चात् ब्राह्मणों को दिया जाता है। पका हुआ भोजन भी पत्तों पर रखकर चूल्हे के पृष्ठ भाग में रखा जाता है और उसके पश्चात् एक पत्ते पर कौवे को, एक पर कुत्ते को और एक पर गऊ को दिया जाता है और इसी रूप में मृत सम्बन्धियों की स्मृति को चिरस्थाई रखने का इस पर्वतीय प्रान्त में चलन है।

गढ़वाल के मुसलमान लोग भी ईद व मुहर्रम के त्यौहार मनाते हैं किन्तु यह भी केवल शहरों तक ही सीमित है या गाँवों में भी, जहां मसजिदें बनी हुई हैं यह त्यौहार मनाये जाते हैं। रमजान में रोजे (व्रत) रखने का गढ़वाली मुसलमानों में भी चलन है किन्तु मैदानी मुसलमानों की तरह उनमें धार्मिक कट्टरता न होकर पर्याप्त उदारता होती है। मेलों के दिन सब छोटे बड़े मुसलमान नये-नये वस्त्रों से सुसज्जित होकर मसजिदों में एकत्रित होते और वहाँ नमाज़ पढ़ते हैं। ग्रामीण मुसलमान साधारण हिन्दू देहातियों की तरह नये कपड़े पहिनने और सुन्दर भोजनादि से ही अपने त्यौहार को मना लेता है। गढ़वाल के बड़े-बड़े नगरों में मुहर्रम पर मुसलमान लोग ताज़िया भी बनाते हैं।

ईसाई लोग भी बड़े दिन का त्यौहार धूम-धाम के साथ मनाते हैं किन्तु मुसलमानों की ही तरह इस दिशा में उनके भी दो भाग हैं। शहरों व विशिष्ट केन्द्रों में रहने वाले ईसाई, मैदानों की ही तरह अपना त्यौहार मनाते हैं किन्तु दूर देहात में रहने वाले अनपढ़ तथा नवदीक्षित ईसाई केवल नये कपड़े और सुन्दर भोजनादि से ही अपने त्यौहार की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति मान लेते हैं। गावों में चारों ओर हिन्दू वातावरण होने के कारण ग्रामीण ईसाइयों को अपने त्योहारों की तिथियाँ तक ज्ञात नहीं होती और इसलिए देहात में फिरने वाले ईसाई प्रचारकों के द्वारा उनका पर्याप्त पथ-प्रदर्शन होता रहता है। ईसाइयों का मुख्य त्यौहार गढ़वाल में बड़ा दिन (२५ दिसम्बर) होता है और 'गुडफ्राइडे' अथवा 'ईस्टर' के सम्बन्ध में देहाती लोग बहुत ही कम जानते हैं।

मेले—गढ़वाल के प्रायः सभी मेले धार्मिक महत्व की विभिन्न घटनाओं का स्मरण दिलाने के लिए प्रचलित हैं और मनुष्य के सामाजिक विकास का भी उनमें धरातल होता है। अधिकांश मेले यहाँ 'अठवाड़' के नाम से होते हैं और उनमें पाण्डव नाच तथा बकरे और नर भैंसों की बलि द्वारा देवियों की उपासना होती है। पशु बलि की प्रथाओं के लिए गढ़वाल की अठवाड़ें तथा शक्तिपूजा अधिकांशतः उत्तरदायी है किन्तु नवीनता के वर्तमान युग में गढ़वाल के अन्तरगत इसके विरुद्ध वातावरण तैयार होता जारहा है।

मानव समाज का शुभ चिन्तन, मेलों के स्थान व तिथियों के निर्णय में विशेषत: ध्यान में रखा गया है। अलग-अलग मौसिमों पर अलग-अलग स्थानों में इस प्रकार मेले रखे गये हैं कि उन स्थानों की भौगोलिक स्थिति और जलवायु उस मौसिम में यात्रियों या मेले में आने वाले दर्शनार्थियों के लिए कष्टप्रद न हो और इस प्रकार अधिक से अधिक जनता उनमें एकत्रित होकर समुचित लाभ प्राप्त कर सके।

धार्मिक भावनाओं के अतिरिक्त भी गढ़वाल में कुछ मेले होते हैं और 'गिन्दी का तमाशा' इन सब में प्रमुख है। इसमें कई पट्टियों के लोग गढ़वाल के पांच-सात विभिन्न पट्टियों के सीमा-स्थानों में मकर संक्रांति को एकत्रित होकर चमड़े की एक गेंद खेलते हैं और जो गांव या पट्टी उस गेंद को अपनी सीमा में लेजाता है वह विजेता मान लिया जाता है। इसी प्रकार कहीं मेलों में रस्साकसी होती है और कहीं, नन्दादेवी के मेले की तरह, बांस की, तेल से भीगी हुई, लम्बी लांग के सिरे पर कुछ मूल्यवान आभूषण लटका कर मेले वालों से कहा जाता है कि इस लांग पर चढ़कर ऊपर जा सकने वाले व्यक्ति के लिए छूट होगी की वह उन आभूषणों को लेजाये। २ पैट बैसाख को एकेश्वर में होने वाले मेले में गेहूँ:-जौ की बालियां चढ़ाई जाती हैं, माघ में पंडुकेश्वर के मेले में घंटाकर्ण के पूजन के साथ वीरत्व का प्रदर्शन होता है और नन्दाष्टमी को बामणी के मेले में भी वीरत्व दिखाया जाता है। कहीं कहीं पहाड़ के ऊपर से पर्याप्त निचाई पर लाए गये एक रस्से की पीठ पर लकड़ी का एक बादी (मनुष्य के रूप वाला एक खिलौना) फिसलाया जाता है और झाँगर जवोर के मेले में भगवती सीता जी की, एक गोल पत्थर के रूप में, प्रतिमां का प्रादुर्भाव तथा उनकी केश-शिखा के रूप में बाबड़ सहसा प्रकट होता है। मौरी के खेल में जो कि प्रति बारहवें वर्ष (तमलाग गगवाड़स्यू में) होता है, भी कुछ थोड़े से लोग एक चीड़ के पेड़ को उखाड़ डालते हैं। संक्षेप में गढ़वाल के प्रमुख मेले तिथि क्रमानुसार निम्न स्थानों में होते हैं :—

विषुवत संक्रांति—अगस्तमुनी, अपोला, कर्ण प्रयाग, कीर्तिनगर, झाल, दनगल, देवलगढ़, फेगु, बिल्वकेदार, ब्यासघाट, मकूमठ, माली देवल, सिलसू तथा सूर्य प्रयाग।

बैसाख २ पैट—एकेश्वर, देवलखाल, बिरौंखाल, री,

बैसाख ३ पैट—कापड़, खोला, जाख, सिज्ञा,

बैसाख ४ पैट—सबधार खाल,

बैसाख ६ पैट—थौल बादशाही और पौऊ,

बैसाख ८ पैट—चमुवां,

बैसाख का तीसरा सोमबार—खिरसू,

ज्येष्ठ संक्रांति—संगला कोटी,

ज्येष्ठ—२१ व २२,—मुण्डनेश्वर,

ज्येष्ठ दशहरा—सुरकण्डा,

आषाढ़ द्वितीय सप्ताह—तमलाग, (प्रति बारहवें वर्ष मौरी)

श्रावणी पूर्णिमा—रुद्रनाथ,

जन्माष्टमी—क्यूंकाला, नागनाथ, बदरीनाथ, तथा हर बारहवें वर्ष नन्दा देवी में।

वामन द्वादशी—बदरीनाथ,

नवरात्री—उरगम, उषागढ़ी (खिरसू), कालीमठ, कुजापुरी, चन्द्रबदनी, ज्योशीमठ, देवलगढ, बदरीनाथ तथा समस्त देवी मन्दिरों में

कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी—श्रीनगर, गोपेश्वर,

„ „ १५—कोरसाड़ा में मनसार,

कार्तिक पूर्णिमा—अनुसूया, मकुमठ,

एगास—त्रियुगीनारायण,

भैय्यादोज—कांडा

मार्गशीर्ष—ऊखीमठ, सेम,

मकर संक्रांति—कर्णप्रयाग, कस्याली, जखोली, नन्द प्रयाग, बसुकेदार, बाड़हाट, व्यासघाट, सल्ड, सूर्य प्रयाग, एकेश्वर

„ गिन्दी का मेला—कटकघर, घंड्याल, डाडामंडी, देवीखेत, थलनदी, फल्दाकोट, सांगुड़,

वसन्त पंचमी—देव प्रयाग, व्यासघाट, एकेश्वर

माघ—पंडुकेश्वर का जाति मेला,

शिवरात्री—क्यूंकालेश्वर, गोपेश्वर, घाट नीलकंठ, महादेव चट्टी, बैरासकुंड, विल्वकेदार, यमकेश्वर, एकेश्वर

नन्दाष्टमी—ज्योशीमठ, बामणी,

रामनौमी—चन्द्रबदनी, देवप्रयाग,

लोक गीत

प्रत्येक स्थान के लोक गीत वहाँ की संस्कृति और सभ्यता के परिचायक होते हुए जनता की तात्कालिक मनोभावनाओं के प्रतीक होते हैं और उन्हें सुन तथा समझ कर उस जाति या वर्ग का सरलता पूर्वक अध्ययन हो जाता है। इसमें शक नहीं कि समाज के अन्तरगत प्राय: अश्लील घटनाओं को लेकर उच्छृङ्खल गीतों की भी सृष्टि होती रहती है और एक बार स्थानीय संगीत वायु मंडल उन्हीं की ध्वनि से मुखरित हो उठता है तथापि ऐसे गीत अधिक समय तक नहीं टिकते, क्यों कि उनकी मौलिक घटनाओं की प्रतिक्रिया का वेग शीघ्रता पूर्वक उठकर तुरन्त दब भी जाता है।

मैं अपनी बाल्यवस्था में प्राय: "तारा पधानी-नैनू तमोटा" अथवा "तिन कुमाली कुर्ता चीरे, द्वी पैसा का बाना वे" के गीत सुना करता था। मेरा खयाल है कि उन दोनों ही गीतों का सम्बन्ध किन्ही अश्लील घटनाओं से था और उस समय के लोगों का उन गीतों से पर्याप्त मनोरंजन भी होता था। किन्तु आज उन्हें कोई नहीं जानता और उनके स्थान पर कभी 'झांपा झुम-रियाणी' का गीत आया फिर 'दौंथी' का, उसके पश्चात् "डांडा का मौड़ू मां" के गीत की चहल पहल रही और अब पिछले कुछ समय से "डिबली भकम बम सरैला" का गीत सुना जाता है। ऐसे उच्छृङ्खल और त्याज्य गीतों से तंग आकर हमें अपने समाज की सरल हृदयता पर तरस आता है। किन्तु गम्भीरता पूर्वक विचार करने से प्रतीत होता है कि अश्लील घटनाओं को रोकने के लिए उसके दोषियों को बदनाम करने का यह साधन-मात्र होता था। वास्तव में ही इस प्रकार जनता के मन पर बदनामी का भय उत्पन्न कर उन्हें सदाचार की ओर लगाया जा सकता है। बहरहाल सामयिक गीतों का अश्लीलस्वरूप हमारे इस लेख की सीमा में नहीं आता।

गढ़वाल के अधिकांश गीतों का निर्माण स्त्री जाति के कोमल हृदय पर किसी की जुदाई या मृत्यु के कारण पड़ने वाले प्रभाव की व्याख्या स्वरूप होता रहा है और गढ़वाल की काव्यकला का इस दिशा में पर्याप्त साफल्य भी रहा है, यह निर्विवाद सिद्ध है। प्राचीन रीति के अनुसार अल्पायु में विवा-हित कन्याएं घर से कहीं दूर अपनी ससुराल में जाकर अपने मातृ-प्रेम की वेदना को आँसुओं के रूप में इधर उधर बखेरती और मातृगृह की दिशा में खड़े हुये पर्वतों अथवा जंगलों की ओर निहारती हुई अकुलातीं हैं। अत: गढ़वाली गीत रचना में महिला जगत की ऐसी स्थिति का चित्रण, विभिन्न घटनाओं के आधार पर, इतने सुन्दर ढंग से किया गया है कि कट्टर से कट्टर

दिल भी उसे सुनकर रो उठता है। "हे डांडी कांठ्यू तुम नीसि जावा" का गीत ऐसी एक घटना का चित्रण है जिस (तथा जिसके अंग्रेजी अनुवाद "Bend down ye high hills") की कवि संसार ने भूरी भूरी प्रशंसा की है।

मेरे स्वर्गवासी बन्धु श्री रामचन्द्र बड़थ्वाल (रेंजर) जिनका जीवन, एक के बाद दूसरी स्त्रियों तथा बच्चों की शोक-पूर्ण मृत्यु के दारुण दुख से कुंठित सा हो गया था, अपने मन की वेदना को आंसुओं में परिवर्तित करने के लिये प्रायः रुलाने वाले गीतों को सुनते थे। मैं देखता था कि बहुधा वे व्याकुल होकर अपने एक नौकर से 'झुमैलो का गीत गाने के लिए कहते और अपने आप कमरे में एक कुर्सी पर बैठे हुए सुनते रहकर फूट-फूट कर रोया करते थे। मैंने अनुभव किया कि उनके विदीर्ण हृदय को ऐसे वेदनामय गीतों से पर्याप्त शान्ति मिला करती थी।

'झुमैलो के गीत में कोई नव वधु अपने मायके की वेदना मिश्रित स्मृति का कैसा मार्मिक चित्रण करती है यह उससे स्पष्ट है—

ऋतु बौड़ी, आइने हे झुमैलो।
दांई को सी, फेरो हे झुमैलो॥
फूली गैने बणु हे झुमैलो, ग्वीराल-बुराँस हे झुमैलो।
झपन्याली डाल्यूं हे झुमैलो, घूगती घूरली हे झुमैलो।
गैरी गदनिऊं हे झुमैलो।
मेलोड़ी बासली हे झुमैलो॥

"अर्थात ऋतुएं चक्कर लगाकर फिर लौट आईं (शायद यह बसन्त ऋतु का समय रहा हो और नव-वधू काफी समय से सुसराल में ही हो), बनों में ग्वीराल और बुरांस फूल गये हैं। झालदार पेड़ों की झुकी हुई डालियों में 'घुगती' नाम की पक्षिणी 'घू-घू' शब्द करती है, नदियों की गहरी घाटियों में 'मेलोड़ी' भी वियोगिनी की भाँति अपनी व्यथा सुनाती होगी।" इन शब्दों में ऋतु का जो दिग्दर्शन हुआ है इससे वियोग की एक मार्मिक अनुभूति मिलती है।

इतना ही नहीं, निम्नलिखित पंक्तियों में उसने यह भी प्रकट कर दिया है कि वह मातृविहीना और भ्रातृविहीना भी है और इसलिए उसे मायके के दर्शन नहीं होते। उसकी वेदना यहाँ और भी साकार हो जाती है। वह रो उठती है—

जौंकी बोई होली हे झुमैलो।
मैतूड़ा बुलाली हे झुमैलो॥
जौंका भाई होला हे झुमैलो. मिलली आंगड़ी हे झुमैलो।
मेरी बोई होंदी हे झुमैलो, मैतूड़ा बुलौंदी हे झुमैलो।
भाई मेरा होंदा हे झुमैलो।
देंदा आंगड़ी-टालखी हे झुमैलो॥

"अर्थात् जिनकी माताएं होंगी उन्हें मायके बुलाएंगी। जिनके भाई होंगे उन्हें आंगड़ी (अंगिया) मिलेगी। मेरी मां होती तो मुझे भी मायके से बुलाया जाता। मेरा भाई होता तो मुझे भी अंगिया और चादर मिलती।" यहाँ पर अंगिया और चादर का ही नाम कपड़ों के लिए लिया गया है और मायके से मिले हुए होने के कारण उनमें मातृप्रेम की व्यन्जना भी होती है। यह भी हो सकता है कि अतीत काल में 'आंगड़ी-टालखी' का कोई विशिष्ट रूप रहा हो या वहाँ के अर्थाभाव में उसे एक बड़ी चीज मानते रहे हों। बाहरहाल नारी हृदय की सुलभ कोमलता और अनुभूति का उक्त गीत में सामंजस्य स्पष्ट है जिससे सुनने वाले का हृदय एक बार रो उठता है।

मायके की मधुर स्मृति में एक नव विवाहिता, मातृगृह की ओर जाने वाली अपनी एक सहेली से किन शब्दों में अपनी वेदना को व्यक्त करती हुई माता के लिए सम्वाद भेजती है:—

जा, दगड्या भग्यानी मैत कु जा,
मेरों रैबार तू ब्वे मूं लीजा।
ब्वै कू बोली तू डांडा आई,
खाजा बुखणा दगड़ा लाई।
घास गडोली तू पैथर खोली,
मेरो रैबार तू ऐथर बोली।

अर्थात् 'ओ भाग्यवान सहेली, तू मायके को जा और मेरी माता को मेरा सम्बाद देना। मां से कहना कि तू बन में आना और अपने साथ कुछ चबेना लाना। ऐ सहेली, अपने घास के बोझ को खोलने से पूर्व मेरा सम्बाद मेरी माता के पास पहुँचाना।" माता से बिछुड़ी हुई नव वधू स्वाभाविक आकुलता से भेजे गये उक्त सम्वाद द्वारा अपनी वेदना का जो चित्रण करती है उसकी तीव्रता को सम्बाद पहुंचाने की शीघ्रता ने उग्रतर बना दिया है।

पर्वतीय प्रदेश प्राकृतिक सौंदर्य के लिए विख्यात है। ग्वीराल, बुरांस, मेलोडी, हिलांस, घुगती, कफ्फू, कुएड़ी, नदियों की सांय-सांय आदि गढ़वाली वस्तुएं विछोह की वेदना को यथावत रखने अथवा बढाने वाली होती है। इन्हें देख या सुन कर सहसा बिछुड़े हुओं की याद हृदय-पट पर अंकित हो जाती है और विशेषत: नव विवाहिता वधुओं को अपनी माता और भाई-बहिनों की इनसे याद आती है। ऐसी स्थिति में किसी नव विवाहिता ने ठीक ही कहा है:—

"तेरी खुद न व्वे,
कुएड़ी सी लौंकी!"

इन शब्दों का भावानुवाद गढ़वाली हृदय ही कर सकता है। मातृ-स्नेह की गम्भीर पीड़ा को यहाँ 'खुद' कह कर व्यक्त किया गया है। उस पीड़ा का स्वरूप पहाड़ों पर वर्षात में लगने वाले कोहरे के सदृश बताया गया है। मेरी दृष्टि में गढ़वाली काव्य कला की यहां पराकाष्टा हो जाती है।

इसी प्रकार अपनी प्रियपुत्री के शोक पूर्ण और आकस्मिक निधन पर एक माता का करुण क्रन्दन निम्न पंक्तियों में, रानी शैब्या के बिलाप की, याद दिलाता है जो उन्होंने रोहित की अचानक मृत्यु पर किया था। मृत सुता का शव अपनी छाती से लगा कर वह दहाड़ें मारती हुई बिलाप करती है—

व्वे, बीजी जादी!
दगड़ा की पंधारी, पाणी ल्हेकी आइने।
दगड़ा की घस्यारी, घास ल्हेकी आइने॥
त्वै बाच नी सांन; क्या ह्वे होलो त्वै।
मेरी बेटी लाडली, क्या ह्वे होलो त्वै॥
व्वे बीजी जादी!

अर्थात्—"तेरी सखी सहेलियाँ पानी भर कर ले आई हैं, जंगल से घास लेकर आ गई हैं, और तू शब्द संकेत भी नहीं करती। तुझे क्या हो गया! मेरी लाडली बेटी तुझे क्या हो गया? जाग जा।" सन्तान का वियोग माता के लिए कितना असह्य है यह अनुभवी प्राणी ही जान सकता है। मृत पुत्री के शोक को उसके सोते रहने की कल्पना द्वारा काफी गम्भीर बना दिया गया है।

शादी-विवाहों के अवसर पर भी गढ़वाल में गीत गाये जाते हैं जिन्हें गढ़वाली बोली में मांगल कहा जाता है। यह मांगल लड़कों के चूड़ाकर्म और यज्ञोपवीत के समय भी गाये जाते हैं। चूड़ाकर्म के अवसर पर माता की ओर से नाई को सम्बोधन कर कहा जाता है:—

नाई रे नाई ! तू मेरो भाई, धर्म को भाई,
मेरा लाडा पीड़ा ना लाई।
त्वे देउलो नाई मीं कानू कुण्डल, शाल दुशाला,
मेरा लाडा पीड़ा नाँ लाई।

अर्थात्—नाई को अपना भाई या धर्म भाई बना कर पीड़ा रहित मुण्डन की प्रार्थना द्वारा माता के पुत्र स्नेह की परिभाषा की गई है और इससे स्पष्ट हो गया है कि पुत्र की पीड़ा की अनुभूति में कानों के कुण्डल और शाल दुशाले दे देना भी माता के लिए साधारण वस्तु है।

[illegible] वाह के लिए आये हुए वर तथा उसके साथी पाहुनों को कन्या के वर [illegible] कर पिठाईं (तिलक) लगाई जाती है। उस समय शुभ कार्य में [illegible] के लिए इष्टदेवों का स्मरण भी किया जाता है जो इस प्रकार [illegible] है :—

या रेणूं पिठाईं, कै देव सोहली ?
या रेणं पिठाईं, ब्रह्मा जी सोहली। इत्यादि—

कन्या पक्ष की ओर से बरातियों को मांगलों द्वारा गालियाँ देने का भी गढ़वाल में प्राचीन रिवाज़ है। यद्यपि आज की दृष्टि में गालियों के उन मांगलों में कहीं-कहीं अश्लीलता भी दृष्टिगत होती है और लोग प्रायः ऐसे गीतों की आलोचना कर उठते हैं तथापि हम देखते हैं भारतवर्ष के प्रायः सभी भागों में ऐसे रिवाज पाये जाते हैं। इसलिए गढ़वाल में उनका होना अनावश्यक और अप्रासांगिक नहीं है। विवाहों की वह गालियाँ इस प्रकार होती हैं :—

भात देंद पौणों, कर्छी लांद डीट,
हमन नीं जाण्यो, तमोटा का जायो।
मिठाई देंद पौणों, पुड़खी लांद डीट,
हमन नीं जाण्यों, हलवाई को जायो।
सूजी देंद पौणों, कढ़ाई लांद डीट,
हमन नीं जाण्यों, लोहार को जायो।

गोत्रोपचार के समय भी वर को गालियों के मांगलों से इस प्रकार कोसा जाता है :—

बेटा न बेटा चन्दन लेटा, करतूरी न लेटा।
बोल बेटा गोत्र अपणों।
माता छ नटणी, पिता छ खतरी, मामा यूं का महाजन का पुतर।
ई होलो बेटा को गोत्र।

इसी प्रकार पर्दा खोलते समय निम्नलिखित गीतों के द्वारा प्रश्नोत्तर के मांगल गाये जाते हैं।

वर पक्ष की ओर से—

खोली देवा खोली देवा, ए दौड़ पड़दा,
देखू मैं कन्या को रूप।

कन्या पक्ष का उत्तर—

हमारी कन्या छ गौरी स्वरूप, तुमारो बन्दड़ा श्याम स्वरूप।
केन होय केन होय श्याम स्वरूप,
बन्दड़ा पर लगे जेठ की धूप।

वर पक्ष की ओर से—

खोली देवा खोली देवा, ए दौड़ पड़दा,
देखू मैं कन्या को रूप।

कन्या पक्ष का उत्तर—

हमारी कन्या छ सावित्री स्वरूप,
तुमारो बन्दड़ा चमार सी कालो।
बन्दड़ा पर लगे जेठ की धूप।

गढ़वाली विवाहों में कन्या की स्वीकृति या सम्मति का महत्त्व तथा उनकी पवित्रता का निम्नलिखित मांगल में साक्षात्कार होता है :—

देदेवा बुबा जी, कन्या को दान,
दानू मां को दान, कन्या को दान।
जिमिदान भूमि दान, सब कोई देला,
तुम देल्या बुबा जी, कन्या को दान।
हीरा दान मोती दान, सब कोई देला,
तुम हे ल्या बुबा जी, पुण्य का लोभी।

विवाह हो चुकने पर कन्या की ओर से—

"एकुली-एकुली मीं, कनू कैकी जौलो।"

इसका उत्तर पिता की तरफ से—

अगाड़ी चोलो बेटी, त्वै दास दासी,
पिछाड़े देउलो त्वै, भैंस्यूं को खरक।

गायूं को गोठ्यार देउलो, वाखरियूं की तांदी,
त्वै मेरी लाडी, मीं एकुली नी भेजू।

देवी-देवताओं के गीत भी गढ़वाल में काफी प्रचलित हैं। गढ़वाल अधिकांशतः शाक्त प्रदेश होने के कारण वहाँ देवी की उपासना अधिक होती है। दुर्गा भवानी, गणेश, विष्णु, शिव आदि की भी प्रायः स्तुति हुआ करती है। अपनी मनोकामना की पूर्ति के लिए किसी ने भगवती ज्वाल्पा की स्तुति में कहा है:—

वाजलो शंख हे देवी भवानी,
वाजलो शंख हे देवी ज्वालपा।
त्वे द्योलो देवी जौंल जटिया,
त्वे द्योलो देवी जौंल लगोठ्या।

[illegible]त्, "हे देवी भवानी! तेरी आराधना में शंख ध्वनि होगी। तुझे जं[illegible] नर भैंसों) का जोड़ा दूंगा। तुझे बकरों का जोड़ा दूँगा। मेरी [illegible]नोकामना पूर्ण कर दे।" गढ़वाल की बलि प्रथा, जिसका अब उन्मूलन हो [illegible] जाना चाहिए, इस स्तुति से स्पष्ट है।

चैत्र मास में गढ़वाल के औजी (हरिजन) जाति के लोग प्रत्येक घर में [illegible]र गीत गा-गाकर ढोल बजाया करते हैं। परम्परा से इस प्रान्त में यह री[illegible] चली आ रही है। उन औजियों का एक गीत यह भी है:—

दान्यूं माँ को दानी, होलो राजा हरिचन्द ऽ
अन्न दान भूमि दान देने राजा हरिचन्द ऽ
राजा हरिचन्द वचनूं को दानी—

पाण्डव नाच करते समय औजी इस प्रकार कहता है:—

हाँ जैंती माँ रला पाँच पण्डवूं,
धर्म वाला कूंती का लाडिला राजा,
धर्म युधिष्ठिर होलो ज्येठो भाई,
तब होलो बीर पुत्र अरजुन ऽ,
तब वीर वायु पुत्र भींमसेन ऽ,
होला नकुल सहदेव लाडिला राजा,
पण्डौं की होली मल्यो जसी टोल ऽ,
होली विंडुड़्यूं की जनी डार ऽ,

महाभारत की समस्त कथा इसी प्रकार गढ़वाली काव्यकला में औजियों के द्वारा पाण्डव नाचों में गाई जाती है। बल्कि कई बार ऐसी-ऐसी घटनाओं

का इन गीतों में वर्णन मिलता है जो इतिहास के विद्यार्थियों के अलावा हम जैसे साधारण लोगों को याद नहीं रहती। जैसे—

"सत्यभामा होली विष्णु की राणी"

या

कमल को फूल दान नारद न कय,
कैलाश माँ रन्दा मामा महादेव,
भूमी को औतार भूमासुर होलो—इत्यादि

स्त्री जाति के अधिकारों का चिन्तन भी गढ़वाली लोक गीतों में प्राय: होता रहता है। सचमुच भी गढ़वाली साधारण समाज, स्त्री का स[illegible] समझने में लगातार अब तक पीछे है और उसका कारण यही हो[illegible] कि आर्थिक दृष्टि से अभी तक ये लोग पिछड़े हुए हैं। किन्तु आज[illegible] कोड बिल' के युग में आर्थिक स्थिति के प्रश्न को सर्वथा पीछे छोड़[illegible] स्वातंत्र्य की प्राकृतिक आँधी का रुकना कठिन है। इस विषय पर [illegible]त प्रचलित है:—

"नारंगी की दाणीं,
जनाना मेज माँ बैठला, मर्द ल्हाला पाणीं।
खेली जाला ताश,
जनाना मेज माँ बैठला, मर्द ल्हाला घास।
झंगोरा की धाण,
जनाना मेज माँ बैठला, मर्द करला धाण।"

या—"सासू जी की डर नींछ अब का जमाना माँ।
हमन छक्कै खाँण जी, बाली उमर माँ॥"

सामाजिक कुरीतियों, शुल्क विवाहों, स्वतन्त्रता व भारत माता पर जागृति के गीत भी गढ़वाली भाषा में प्राप्य हैं। भारत की स्वतन्त्रता के लिए गढ़वाल के नारी हृदय ने भी जवाहरलाल तथा सुभाष बाबू से प्रार्थनाएं की हैं:—

हे दादा जहोरी दादा, कऽर आजाद ऽ
हे भैजी सुभाष भैजी, कऽर आजाद ऽ

इसी प्रकार लड़ाई में भर्ती होकर जाने के लिए भी गढ़वाली गीतों की रचना हुई और उन दिनों यत्र-तत्र वही गीत सुने जाते रहे:—

अब चली गय केसरू, ठम-ठम पल्टन माँ।

चिलमी को पीच,
भरती होई गय केसरू, लैन्सिडौन का बीच।
पाकी जाली कौणीं,
ट्रेनिंग कू चली गय, जबलपुर की छौणीं।

गढ़वाल के सबसे प्रसिद्ध गीत 'थड़्या गीत' के नाम से पुकारे जाते हैं। इन गीतों में जहाँ अश्लीलता तथा उच्छृंखलता का अभाव होता है वहाँ ...माजिक आचार-विचारों का शिष्ट चित्रण भी है। वर्तमान काल में गाँव के ...री पुरुष एक स्थान पर एकत्रित होकर इन गीतों को बड़े चाव से गाकर ... का अनुभव करते हैं। अन्यत्र भी इसका वर्णन किया गया है।

...र 'पवाँड़ा' नाम के गीत भी गढ़वाल में काफी प्रसिद्ध हैं। इन्हें ... रात-दिन एक कर देते हैं। यद्यपि पवांड़े गढ़वाल के दूर देहातों में ...रह गये हैं क्योंकि दुनिया की नई रोशनी में आधुनिक विचारधारा के लो... इस ओर रुचि नहीं रही, तथापि यह गीत काफी प्राचीनता लिए हुए हैं ता... गढ़वाल के गीत साहित्य और वहाँ की सांस्कृतिक उच्चता इन गीतों में ...भाषित होती है। यह गीत गढ़वाल के वीरों की प्रशंसा तथा धार्मिक ...वना की अभिवृद्धि के लिए रचे गये होंगे यह अनुमान होता है।

...ाल के गीत बहुधा अतुकान्त पाये जाते हैं किन्तु उनमें सुन्दर भाव-व्यंजना और शब्द सौंदर्य पूर्ण रूपेण विद्यमान होता है। अतुकान्त होते हुए भी उनका प्रवाह और सुन्दर स्वर-लहर मनुष्य की मनोभावनाओं में विचित्र उथल-पुथल मचा देते हैं। हो सकता है कि हमारे ग्रामीण कवि, छन्द शिक्षा और अलंकार शास्त्र से अनभिज्ञ रहे हों किन्तु गढ़वाली गीतों में उनकी भावुकता और कल्पना-शक्ति को देखकर सहसा हम नहीं कह सकते कि वे शिक्षित नहीं थे।

गढ़वाल के आधुनिक कवियों में श्री भवानीदत्त थपलियाल का नाम विशेष उल्लेखनीय है। गढ़वाली बोली में उनके जय-विजय नाटक तथा प्रह्लाद नाटक जनता को काफी पसन्द आए और उनमें गाये गये गीत जनता की जबान पर कई वर्षों तक चढ़े रहे। श्री भजनसिंह 'सिंह' ने भी अपनी 'सिंह-नाद' पुस्तक में गढ़वाली लोकगीतों का अत्यन्त विद्वतापूर्ण वर्णन किया है और गढ़वाल के समाजसुधार के लिए पर्याप्त सामग्री उपस्थित की है। अब धीरे-धीरे हमारे कवियों का ध्यान अपनी बोली की ओर जा रहा है और उस में कविताएं बनाकर जनजागरण के लिए गढ़वाल को वे काफी कुछ दे सकेंगे, ऐसा विश्वास होता है।

धार्मिक महत्त्व और यात्रा

प्राचीन भूगोल में गढ़वाल की स्थिति का वर्णन उसके धार्मिक मह[illegible] का विवरण है और सम्भवतः इसलिए यह आवश्यक है कि संक्षेप में [illegible] रूप समझ लिया जाए। वैसे भी हिन्दुओं के धार्मिक कृत्यों में [illegible] भारतखंडे" सुनते रहकर सहसा उसकी स्पष्ट परिभाषा जानने [illegible] होती है।

पुराणों में स्थान-स्थान पर सात द्वीपों या महाद्वीपों का व[illegible] जाता है जो कि क्रमशः क्रौञ्च, कुश, शाल्मली, पलाक्ष, जम्बू, शक औ[illegible]र के नाम से बताए गये हैं। इन द्वीपों में से प्रत्येक को एक दूसरे से [illegible] रखने के लिए उनके बीच-बीच में मधुसागर, मद्यसागर, घृतसागर, [illegible]सागर, लवणसागर, सलिलसागर और क्षीरसागर नामक सात समुद्रों का [illegible] वर्णन आता है। यह माना गया है कि जलमय पृथ्वी पर सर्व-प्रथम जो [illegible]-भाग उत्पन्न हुआ था वह क्रौञ्च द्वीप था और वह उत्तरी ध्रुव के निकट था। उस द्वीप के निवासियों की देह हवा की तरह बताई गई है, ऊँचाई १७५ फिट और यह भी कहा गया है कि उनमें मनुष्य का चिन्ह भी नहीं होता था। आज के शिक्षित लोग किसी जीव की इतनी लम्बाई को हास्यास्पद मानते हैं जब कि बड़े-बड़े पहाड़ों तथा भूमि की खुदाई में समय-समय पर मनुष्य देह के अनेक ऐसे ढाँचे इसके प्रमाण स्वरूप प्राप्त होते रहते हैं जिनको मनुष्य देह का ढाँचा मान लेने में हमें वैज्ञानिकों व अन्वेषकों पर बहुधा शक होने लगता है। क्रौंच द्वीप के कई भाग कालान्तर में पानी में डूबकर छिन्न-भिन्न हो गये और उसके पश्चात् कुश द्वीप यूरोप के उत्तर में उत्पन्न हुआ। इसके निवासियों के सम्बन्ध में कहा गया है कि वे स्वेदज (पानी से उत्पन्न होने वाले) होते थे और उनकी ऊँचाई भी पूरे चालीस गज कही गई है। कुछ समय के बाद वह द्वीप भी अधिकांशतः नष्ट हो गया और उसके पश्चात् शाल्मली द्वीप का अविर्भाव हुआ जिसे यूरोपियन भूगोल-वेत्ता लमूरिया के नाम से पुकारते हैं। लाखों वर्ष पूर्व यह द्वीप प्रशान्त महासागर में अवस्थित था और अब उसके दक्षिणी भाग-आस्ट्रेलिया और

न्यूज़ीलैण्ड को छोड़कर शेष भाग, अपनी उर्वराशक्ति के पुनरार्जन के बाद पुनः कभी ऊपर उठने के लिए, पैसिफिक महासागर की भयंकर लहरों के नीचे दबा पड़ा है। इस द्वीप के प्राणियों की ऊँचाई भी साठ फीट बताई गई है और यह भी, कि वे मनुष्य-रूप वाले होते थे। इनके बारे में यह भी वर्णन मिलता है कि वे पहले अण्डज हुआ करते थे और कालान्तर में [illegible]ीय सृष्टि की ही तरह उनकी भी उत्पत्ति होने लगी थी।

[illegible]ूरिया के पश्चात् पलाव द्वीप की उत्पत्ति हुई जिसे आज के भूगोल [illegible] 'ऐटलांटिस' कहते हैं और जो यूरोप और अमेरिका के मध्यवर्ती [illegible]सागर में अफ्रीका के पश्चिमी भाग तक फैला हुआ था। [illegible] इस द्वीप के निवासियों ने प्रत्येक दृष्टिकोण से आश्चर्यजनक उन[illegible]ी। उनकी सभ्यता और विज्ञान का अनुमान आज के रिसच[illegible] इस बात से लगाते हैं कि अफ्रीका के पश्चिमी भाग की खुदाई [illegible] स्थान पर बड़े-बड़े शहरों के खंडहर मिलते हैं और अटलांटिक महा[illegible] की तलहटी में भी विशाल नगरों के चिन्ह पाये गये हैं। कुछ काल [illegible]श्चात अटलांटिक के इर्द-गिर्द दूसरे भू-भागों के ऊपर उठने से उसमें [illegible] की बड़ी-बड़ी लहरें और बाढें आईं और इस प्रकार इसे भी जलसमा[illegible]मिल गई। मुसलमानों और ईसाइयों के धार्मिक ग्रन्थों में अटलांटि[illegible]की इस घटना को 'नूह की बाढ़' के नाम से पुकारा गया है और हिन्दू ग्रन्थों में 'जल प्रलय' के नाम से। इसके पश्चात् हिन्दू पुराणों में सर्वाधिक वर्णित, जम्बूद्वीप की, आज से अनुमानतः अस्सी हजार वर्ष पूर्व उत्पत्ति हुई जिसे एक लाख योजन लम्बा और कमल के आकार का एक महाद्वीप कहा गया है।

शक और पुष्कर द्वीप की उत्पत्ति के लिए अभी तक यह नहीं मालूम हो सका है कि वह कहाँ होगी।

जम्बू द्वीप के मध्य में मेरू या सुमेरू नामक एक अत्यन्त सुहावने और गुम्बज के रूप वाले पर्वत का वर्णन है और यह भी, कि इस पर्वत के उत्तर और दक्षिण की ओर पर्वतों की तीन-तीन पंक्तियाँ हैं तथा जम्बू द्वीप की सीमा पर मेरू पर्वत से ठीक दक्षिण की ओर हिमालय या हेमवन्त अवस्थित है। वायु पुराण में सुमेरू पर्वत के निकट चार बड़ी-बड़ी झीलों का भी वर्णन आता है और चार बड़ी-बड़ी नदियों के उद्गम का भी।

उक्त भौगोलिक शास्त्र की सचाई की ढूँढ करते हुए अनुसन्धा[illegible] समय तक विद्यार्थियों ने मेरू या सुमेरू पर्वत की कल्पना कैलाश पर्वत से की

कि गढ़वाल के उत्तर में तिब्बत प्रदेश में अवस्थित है। इस आधार पर मेरू पर्वत के साथ बताई गई अन्य बातों का भी साक्षात्कार हो जाता है। भारतवर्ष और उसके कुछ उत्तरी प्रदेशों को मिलाकर बनने वाले जम्बू द्वीप के बीचों बीच पश्चिमी तिब्बत में स्थित इस पर्वत का आकार ठीक गुम्बज का सा है। मानसरोवर और राकसताल, जो कि गढ़वाल की माना घाटी के निकट ही हैं, के साथ काश्मीर के उत्तर पूर्वी किनारे की दो बड़ी-बड़ी झीलों को मिलाकर चार झीलों का प्रमाण भी इस प्रकार मि ही है और सिन्धु, सतलज, औक्शस और ह्वांगहो ये चार बड़ी-बड़ी का उद्गम भी कैलाश के इर्द-गिर्द है ही। बल्कि सुमेरू पर्वत की मान्यता के लिए हिंदुओं के पवित्रतम तीर्थ—बदरीनाथ और केदारनाथ में, अमरनाथ काश्मीर में, पशुपतिनाथ नेपाल में—इसी हिन्दू धर्म ग्रन्थों में प्रकृति वैचिञ्य का इस पर्वत को एक भी माना गया है और सचमुच भी इसकी बनावट और सु ोहित होकर आज के यात्री वहाँ जाकर स्वर्गानुभव करते हैं। म र और राकसताल की गोलाई ३१-३१ मील है और मनुष्य की दो के बीच में नाक की तरह उन दोनों झीलों के अन्तर्गत मानधाता पर्वत गनचुम्बी चोटियों और सिराहने की तरफ दिव्य मुकुट मणी की तरह कै पर्वत को देखकर यात्री की आँखें पलक मारना भूल जाती हैं। आज के ज लॉजिस्ट भी यह मानते हैं कि दुनिया में ऐल्प्स, हिमालय, एण्डीज़ रोकीज़ ऐसे पहाड़ हैं जिन्हें पर्वतों की पुरानी श्रृंखलाओं के प्रतीक अरब की पहाड़ियों तथा दक्षिण भारत की पहाड़ियों से काफी नया और यौवन सम्पन्न माना जाता है।

सुमेरू पर्वत की विशिष्टता और उसके इर्द-गिर्द स्थित पर्वतों, झीलों व नदियों की इस प्रमुखता के कारण ही भारतीय, चीनी व मंगोलियन लोग पर्वतों को देवताओं का स्थान मानते हैं, क्रिश्चियन लोग अपना बा -अदम पहाड़ों को ही बताते हैं। महाकवि कालिदास की कविताओं से मानसरोवर झील के अनोखे फलों के पेड़ों व सोने चाँदी और जवाहिरात वाली रेत का भी पता लगता है। बल्कि महाराज दत्तात्रेय ने तो वहाँ सोने की खान ही बताई है।

मध्य एसिया से आए हुए आर्य लोगों के सम्बन्ध यह माना जाता है कि वे सुमेरू पर्वत के निकट से ही भारत प्रवेश हुए थे और इस प्रकार विश्वास किया जाता है कि हिन्दू धर्म ग्रन्थों की रचना उसी आध्या-

रिमक भू-भाग में हुई है। मानसरोवर के चारों ओर खड़े हुए शतकुल पर्वतों में ही आर्यों की कुछ पीढ़ियाँ उत्पन्न हुई थीं और इसी लिए हिन्दू विवाहों में आज भी वर और वधू को शतकुल पर्वत की याद दिलाई जाती है। सुमेरु पर्वत और मानसरोवर के ठीक दक्षिण में गढ़वाल अवस्थित है और प्राचीन भूगोल के अनुसार इस प्रकार हमारे इस देश की स्थिति का चित्रण हुआ है।

गढ़वाल, हिन्दू संसार का एक आराधना मन्दिर है और कोटद्वार तथा [illegible]रिद्वार उस मन्दिर के विशाल प्रवेश द्वार हैं। उस मन्दिर में कान्तिमान [illegible] विशुद्ध हिमालय के सिंहासन पर देवता लोग यत्र-तत्र विराजमान हैं [illegible] इसके प्रक्षालन के लिए संसार की समस्त नदियों में उत्तम और उत्कृष्ट [illegible]ी विद्यमान हैं। जंगलों की अनेक बहुमूल्य जड़ी बूटियाँ व [illegible]रहों घंटे देवताओं को अपनी सुगन्धि की धूप देते और पुष्प वर्षा [illegible] और वहाँ के ऊँचे-ऊँचे जलप्रपात और ढलाव पर वेग के साथ ब[illegible] नदियाँ अपने ध्वनि गर्जन से नगाड़े बजाते रहते हैं। पर्वत शि[illegible]र भर्र-भर्र करता हुआ पवन हर घड़ी देवताओं का आह्वान करत[illegible] विभिन्न ऋतुओं पर चहचहाने वाले पक्षी तन्मय होकर मंगल गान करते [illegible] ऐसा प्रतीत होता है कि देवताओं ने सचमुच ही अपने लिए इस भू-भाग को [illegible] की हो। स्कन्द पुराण का एक भाग 'केदार खंड' महर्षि वेदव्यास ने गढ़[illegible] की धार्मिक महिमा वर्णन करते हुए निर्माण किया है जिसमें गढ़वाल के हरिद्वार से लेकर हिमालय पर्यन्त समस्त नदियों, झरनों, पहाड़ों, गिरि गुफाओं, शिवलिंगों, दुर्गापीठ आदि सिद्ध-पीठों गुप्त व प्रकट तीर्थों का विस्तार पूर्वक वर्णन है। श्रीमदभागवतादि पुराणों में भी श्री बद्रिकाश्रम की अतुल महिमा का कीर्तन हुआ है तथा श्रुति-स्मृति आदि में भी उत्तराखंड के इस देव-लोक का स्थान-स्थान पर वर्णन है।

देव, दानव, यक्ष, किन्नर, ऋषी-मुनियों ने उग्र तपश्चर्या के द्वारा इस स्वर्ग भूमि में धर्म, अ[illegible] काम और मोक्ष की प्राप्ति की है। श्री बदरीनाथ पुरी के निकट सरस्वती नदी के तट पर महर्षी वेदव्यास ने समस्त पुराणों की रचना की। सतोपंथ अथवा सुमेरू पर्वत पर भगवान आशुतोष ने राजा भगीरथ को पतित पावनी श्री गंगा जी की धारा प्रदान की थी।

वैदिक काल में भी वशिष्ठ, कश्यप, अत्री, यमदग्नि, गौतम, विश्वामित्र और अगस्त्य आदि अनेक ऋषि मुनियों ने गढ़वाल के इस देवलोक में आकर तपस्या की थी। भगवान रामचन्द्र जी ने अलकनन्दा व भागीरथी के संगम पर तथा भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र ने गन्धमादन पर्वत पर कुछ समय तक

तपस्वियों का जीवन बिताया। पाण्डवों ने वृद्धावस्था में परीक्षित को राज्य देकर केदारनाथ के ईशानवर्ती स्वर्गारोहण पर्वत से स्वर्गागमन किया था।

आधुनिक काल में भी भारतवर्ष तथा बाह्य देशों के बड़े-बड़े लोग प्रायः गढ़वाल में आते और यहाँ के जलवायु और शुद्धता से अपनी बौद्धिक और आध्यात्मिक उन्नति करते रहते हैं। स्वामी विवेकानन्द, दयानन्द, रामतीर्थ प्रभृति महात्माओं ने समय-समय गढ़वाल के वनों में भ्रमण कर आत्मबल की सिद्धि प्राप्त की थी। स्वामी शंकराचार्य जी ने बदरी[illegible] रहकर ही वेदों पर भाष्य लिखे और भगवान् बुद्ध को भी हिमालय [illegible] वनों में ही तत्व ज्ञान की प्राप्ति हुई थी। आज भी लाखों की संख्या में प्रतिवर्ष इस स्वर्गधाम की यात्रा के लिए आते हैं और यात्रा [illegible] धार्मिक वातावरण रहने तक सदैव बना रहेगा।

यों तो गढ़वाल के गाँव-गाँवों में अथवा नदीतटों और प[illegible] [illegible]भी देवताओं के असंख्य मन्दिर बने हुए हैं और उनमें से कई अ[illegible] [illegible]न व प्रसिद्ध मन्दिर हैं किन्तु गढ़वाल की धार्मिक महत्ता उसके चार धा[illegible] कारण विशेष प्रकार से मानी गई है। अकेले बदरीनाथ को भारतवर्ष के [illegible] चार धामों (बदरीनाथ, जगन्नाथ, सेतबन्धु-रामेश्वर व द्वारिका) में से ए[illegible] उत्तर वर्ती धाम मानकर भी मैदानी भारतवर्ष को इस पर्वतीय प्रान्त का [illegible]भास होता है किन्तु इसके साथ केदारनाथ, गंगोत्री और यमनोत्री भी विशेष महत्व पूर्ण तीर्थ हैं इसलिए गढ़वाल के अन्दर चार धाम बन गये हैं।

बदरीनाथ अलकनन्दा नदी के दक्षिण पार्श्व में पृथ्वी की अक्षांस रेखा ३०"४४"५६ और देशान्तर रेखा ७६"३२"२०" पर अवस्थित है। समुद्र तट से उस स्थान की ऊँचाई १०२४८ फीट है। यह तीर्थ अगम्य और परम ऐश्वर्य का देने वाला माना जाता है। पहले केवल रावल के द्वारा इसकी सभी प्रकार व्यवस्था होती थी और अब उत्तर प्रदेशीय सरकार द्वारा निर्माण की गई बदरीनाथ कमेटी के द्वारा इसकी आर्थिक व्यवस्था होती है। इस मन्दिर के अन्तरगत लक्ष्मीमठ, माता मूर्ति, पंडुकेश्वर, ज्योशीमठ, नृसिंहजी, ज्योतिश्वर महादेव, वासुदेव मठ, रवेश्वरमठ, भविष्यत् बद्री, दाड़िमी नृसिंह, लक्ष्मीनारायण, सीताराम मठ, वृद्धबदरी, लक्ष्मीनारायण दूसरा, लक्ष्मीनारायण तीसरा और लक्ष्मीनारायण चौथा भी व्यवस्थित होते हैं। तिब्बत के लामा की ओर से भी उनके प्रतिनिधि के द्वार प्रति वर्ष बदरीनाथ मन्दिर के लिये चाय, चंवर आदि कई वस्तुएँ भेंट स्वरूप आती हैं और मन्दिर से भी इस प्रकार उनके लिए प्रसाद भेजा जाता है। टिहरी का

राजा पहिले मन्दिर बदरीनाथ का अधिष्ठाता माना जाता था। इस मन्दिर के सम्बन्ध में प्रसिद्ध स्थानों के अध्याय में वर्णन आया है।

केदारनाथ, मन्दाकिनी की घाटी में पृथ्वी के अक्षांश ३०"४४"१५" और देशान्तर ७६"६" ३३" पर समुद्रतट से ११७५३ फीट की ऊँचाई पर अवस्थित है। यह भगवान भोलेनाथ का मन्दिर है। इसके विषय में यह गाथा है कि [illegible] पाण्डव राज पाट छोड़कर केदारनाथ धाम की यात्रा के लिए आए थे तो [illegible]र गोत्र-हत्या का दोष मानकर भगवान शिव पृथ्वी में घुसने लगे थे कि [illegible] महाबली भीम ने उनके पृष्ठ भाग को पकड़ लिया और वही शिला अब [illegible] के नाम से प्रसिद्ध है। पृथ्वी में घुसे हुए उनके अग्र भाग के [illegible]ल्पना की जाती है कि वह नेपाल में निकला है और वहाँ पशु-[illegible]नाम से प्रसिद्ध हुआ है। केदार भूमि में इसी शिला को अन्य चा[illegible] (बाहु तुंगनाथ में, नाभी मदमहेश्वर में और जटा कल्पेश्वर में) में पू[illegible]ा है। केदारनाथ के पांच भिन्न-भिन्न अंग (केदारनाथ, तुंगनाथ, रुद्रन[illegible] मदमहेश्वर और कल्पेश्वर) इसी कल्पना की प्रतिमूर्ति के रूप में आज [illegible]यों के द्वारा देखे और पूजे जाते हैं।

[illegible] मन्दिर का समस्त प्रबन्ध भी पहले रावल के ही अधिकार में था किन्तु [illegible]दरीनाथ कमेटी के निर्माण से उसकी आर्थिक व्यवस्था भी कमेटी को दे दी गई है। इस मन्दिर के अन्तरगत भी अगस्त्यमुनि, गुप्तकाशी, तृयुगी नारायण, लक्ष्मी नारायण, गौरी देवी, मदमहेश्वर तुंगनाथ, कालीमठ, रुद्रनाथ, गोपेश्वर और ऊषीमठ के मन्दिरों की व्यवस्था होती है।

गंगोत्री, केदार क्षेत्रीय हिमालय के ठीक पीछे गंगा जी के दक्षिण कूल पर पृथ्वी के अक्षांश ३०"५८"१०" तथा देशान्तर ७८"५४"३०" पर समुद्र तट से १००२० फीट की ऊँचाई पर अवस्थित है। यहाँ श्री गंगा जी का मन्दिर है जिसमें भगवती गंगा जी, राजा भगीरथ व अन्य देवताओं की मूर्तियाँ विराजमान हैं। इस मन्दिर के सम्बन्ध में गाथा है कि राजा सगर के साठ हज़ार पुत्रों को, जो कि कपिलदेव ऋषि के श्राप से भस्म हो गए थे, मुक्ति दिलाने के लिए राजा भगीरथ की उग्र तपश्चर्या ने ब्रह्मलोक से वैशाख शुक्ला सप्तमी के दिन गंगा की धारा प्राप्त की थी। इस मन्दिर के पूजनादि के लिए रावल या महन्त की प्रथा नहीं है। गृहस्थी ब्राह्मणों के द्वारा इसके समस्त कार्यों का सम्पादन होता है।

यमनोत्री, यमुना नदि के उदगम स्थान, बन्दरपुंछ हिमालय के यमनोत्तरी कांठा में है और पुराणों के अनुसार यमुना जी सूर्य भगवान की पुत्री, यमराज

की भगिनी और भगवान कृष्णचन्द्र की आठ पटरानियों में से कालिन्दी के नाम से एक थीं अतः यमनोत्री के दर्शन से यात्री को भोग, मोक्ष और आयु मिलती है। पौराणिक कथाओं के अनुसार महादेव जी के साथ लंका से आये हुए बारह ऋषियों का निवास इसी क्षेत्र में है जहाँ वे शिवजी की तपस्या करते हैं और महावीर हनुमान जी भी बन्दरपुंछ हिमालय की चोटी पर तपस्या करते हैं यह विश्वास किया जाता है। यमनोत्री बड़ा अगम्य तीर्थ [illegible] यहाँ यमुना जी का एक छोटा सा मन्दिर बना है और एकाध धर्मशाला है जो कि अत्यधिक हिमपात से बहुधा टूट फूट जाते हैं। अन्य तीन [illegible] तरह यह भी पूरे छः मास तक बन्द रहता है।

उक्त चार धामों के अतिरिक्त गढ़वाल में और भी कई प्रसिद्ध [illegible] तीर्थ हैं जो कई तो बदरीनाथ केदारनाथ के मार्ग में ही अवस्थित [illegible] इधर उधर बने हैं। देव प्रयाग में रघुनाथ मन्दिर, उत्तर काशी में [illegible] नाथ मन्दिर, श्रीनगर में कमलेश्वर मन्दिर, चन्दगढ़ में भुवनेश्वरी [illegible]दर, चमुण्ड में सुरेश्वरी मन्दिर. लंगूर गढ़ी में भैरव मन्दिर, पौड़ी में क्यू[illegible]श्वर मन्दिर, चौरास में किलकिलेश्वर मन्दिर, टिहरी में सत्येश्वर मन्दि[illegible] और अनेक शिवजी तथा लक्ष्मीनारायण जी के मन्दिर हैं जिनके आध[illegible]र गढ़वाल के समस्त गावों को ही तीर्थ कह देना अतिशयोक्ति नहीं ह[illegible]। वास्तव में ही गढ़वाली गांवों की स्थापना सर्वप्रथम ऋषि आश्रमों के रूप में हुई हो इसका अनुमान लगता है। आज जन संख्या के बढ़ाव के साथ-साथ उन गांवों का भी पर्याप्त फैलाव हो गया है। गढ़वाल के प्रमुख स्थान अब तक भी अपने नामों के पीछे कोई-न-कोई ऐतिहासिक गाथा रखते हैं और वहां के खंडहरों तथा चट्टानों और खोहों में गढ़वाल के उज्वल अतीत की साक्षी स्वरूप अनेक प्रमाण मिलते हैं और इस प्रकार वहाँ की धार्मिक मान्यता का पता लगता है।

यातायात के साधनों का गढ़वाल में अभी पिछले दिनों तक पर्याप्त अभाव रहा है और इसलिए अगम्य तीर्थों की यात्रा सुलभ नहीं थी। मैदानी समतल भूमि पर चलने वाले रेलों अथवा मोटरों की सवारी करने वाले यात्री लोग गढ़वाली पर्वतों के भयंकर उतार चढ़ावों को देखकर ही घबड़ा उठते थे। अतः ऐसे लोगों को पीनस डंडियों या बाँस की बनी हुई कंडियों पर बिठा कर मज़दूरों की पीठ पर ले जाया जाता था। अब कोटद्वार तथा ऋषीकेश से मोटर लारियों की यथा सम्भव व्यवस्था हो गई है और इसके द्वारा हिन्दू संसार की धार्मिक प्रवृत्ति के सामने पड़ने वाली उक्त समस्या का निराकरण होता जा रहा है। ऋषीकेश वाली मोटर सड़क कीर्तिनगर तक और कोटद्वार

वाली चमोली के निकट तक चली गई है और आगे भी काम चालू है। बल्कि सरकारी योजना के अनुसार इन पंक्तियों के पाठकों की दृष्टि में जाने से पूर्व पुरी बदरीनाथ व केदारनाथ में बिजली आदि का प्रबन्ध हो चुकेगा, यह विश्वास किया जाता है।

यातायात के साधनों के अतिरिक्त यात्रियों की सुविधा के लिए सरकारी व्यवस्थाएँ भी हुई हैं और होती जा रही हैं। यात्रा के समय स्वास्थ्य [illegible] के सैकड़ों कर्मचारी यात्रा मार्ग की सफाई तथा चिकित्सा आदि के [illegible] होते हैं। पुलिस का प्रबन्ध है, स्थान-स्थान पर डाकखाने [illegible] तारघर खुले हैं और इस प्रकार आज से पचास वर्ष पूर्व की [illegible] की कठिनाइयां दस प्रतिशत से भी कम रह गई हैं।

[illegible] कठिनाइयों का हल करने में बाबा काली कमली वाले का प्रयत्न विशे[illegible] रहा है और इसलिए प्रशंसनीय भी। उनके उद्योग से आज प्राय: [illegible] तीर्थों में धर्मशालाएँ, सदावर्त तथा प्याऊ लगी हुई हैं और उनके प्रधान [illegible]लय, ऋषीकेश से सन्त साधुओं को यात्रा का खर्च और भोजनादि दिया [illegible] है।

[illegible]खंड के इन तीर्थों की यात्रा के लिए यात्री लोग बहुधा हरिद्वार से चलक[illegible] और देवप्रयाग तक गंगा के किनारे-किनारे आकर श्रीनगर होते हुए रुद्रप्रयाग में केदार क्षेत्र को मुड़ जाते हैं। केदारनाथ के दर्शनों के पश्चात पुन: नाला चट्टी तक वापस आकर वे बदरीनारायण को जाते हैं। पुरी बदरीनाथ में यात्रियों के अलग-अलग समूह बनकर कुछ यमनोत्री का मार्ग आरम्भ करने के लिए वहाँ से प्रस्थान करते हैं और कुछ वापसी यात्रा के लिए। यमनोत्री जाने वाले लोग देवप्रयाग तक वापसी मार्ग पर लौट कर आते और वहाँ से सिमली होते हुए यमनोत्री और तदुपरांत पुन: सिमली लौट कर गंगोत्री जाते हैं। वापस जाने वाले लोग पुरी बदरीनाथ से कर्णप्रयाग होते हुए रामनगर चले जाते हैं, और दूसरे कई यात्री कर्णप्रयाग से गवाई होते हुए काठगोदाम उतर आते हैं। कई यात्री नरेन्द्रनगर से यमनोत्री जाते और पुन: यमनोत्री से गंगोत्री होते हुए केदारनाथ जी को चले आते हैं और इसी प्रकार कुछ लोग देहरादून गंगोत्री लाइन से ही आरम्भ कर गढ़वाल के चारों धामों की यात्रा करते हैं।

★